कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 13, Issue 50
April-June, 2016

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE (LIMKA BOOK RECORD HOLDER)

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १३ - अंक ५०, अप्रैल-जून २०१६

शहर के लोग

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

आग लगी है
क्षितिज-वनों में
लपटें उठ रही हैं
जैसे चौकड़ी भरते द्वाभा के
द्रुतगामी नीले हरिन
जैसे सुनहरे रंगों की बकरियों के शिशु
छलांगें भर रहे हैं
अपने आश्रय-स्थल की ओर जाते हुए.

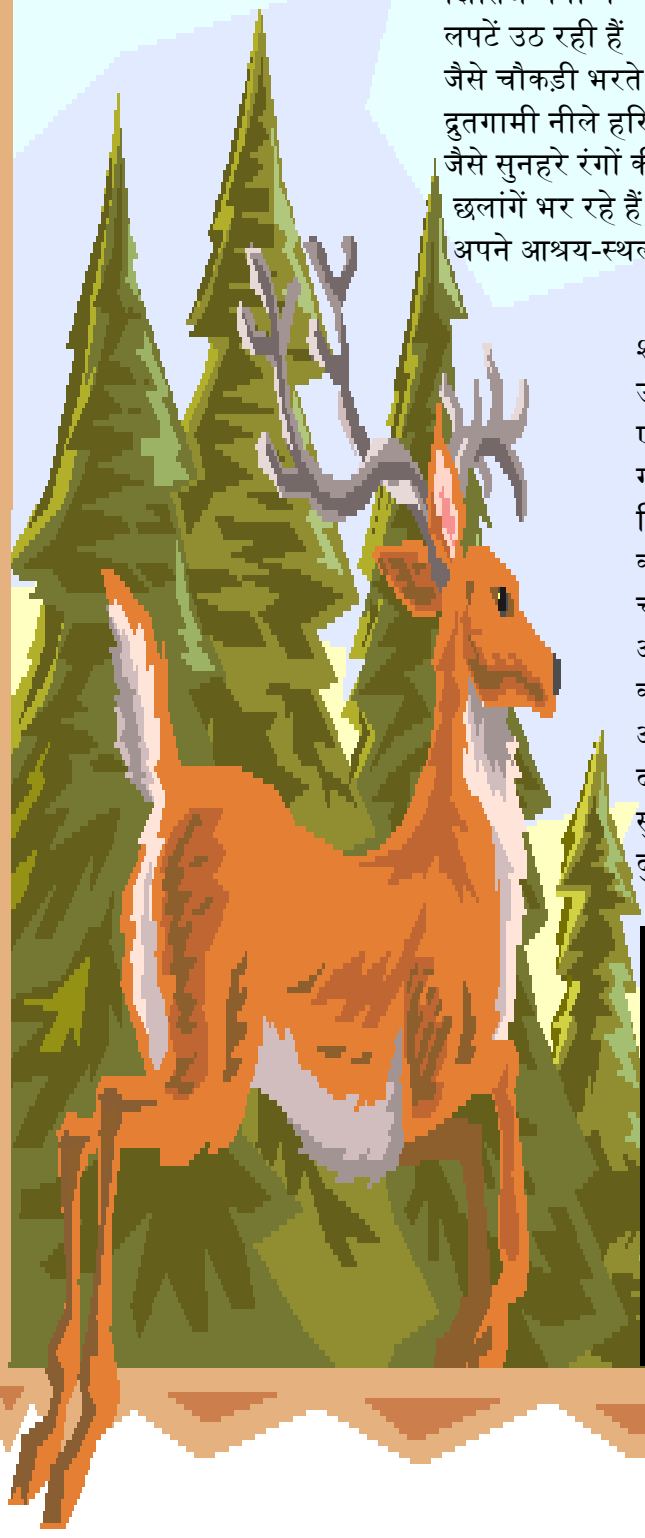

शहर के नीचे
उग रहा है
एक कंकरीट का गुलाब
गतिविहीन डंठल लिए
किसी अध:कोष्ठ की
कर रहा है प्रतीक्षा
चांद्रायण पराग के लिए
और आग की लपटों में साँस लेने को
कंकरीटी गुलाब की पंखुरियों में खोए
अदृश्यप्राय
दौड़ते लोग
सुखों से ऊबते लोग
दु:खों में डूबते लोग
शहर के लोग.

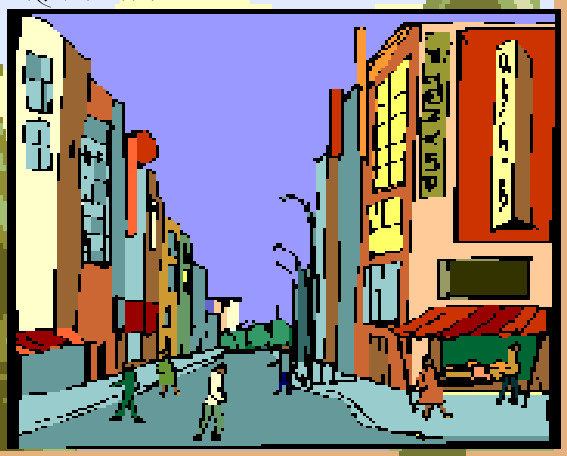

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
पत्र		३
माँ तू कितनी प्यारी है	आलोक कुमार सिंह	४
रवीन्द्र नाथ ठाकुर	अनिता शर्मा	५
नकलधाम	डॉ. मनीष कुमार मिश्रा	७
व्यापार बनती शिक्षा	अरुण तिवारी	१२
लोक से होता है मिथक का सृजन	प्रभु जोशी	१३
हमारा प्रेम	सपना भट्ट	१५
प्रेम	डॉ. शिप्रा शिल्पी	१६
गंगा की महिमा जाने-अनजाने साहित्यकारों की दृष्टि में	डॉ. एन.के. चतुर्वेदी	१८
भारत क्या है	फ्रांस्वा एम. वोल्तेयर	२१
गफ़ूर का बगीचा	रतन वर्मा	२२
भारत क्या है	एर्विन श्रोडिंगर	२५
स्वतंत्रता, स्वाधीनता और स्वच्छंदता	रमेश जोशी	२६
दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	२८
एकांत क्षण	लावण्या शाह	३४
मुमुर्षा में बदलती जिजीविषा	जयंत जिज्ञासु	३५
बिन तुम्हारे	मंजीत कौर मीत	३७
ज़ुन्नार	सोहन दास वैष्णव	३९
ख़ूब होता है	दिनेश कुमार जांगड़ा	४२
मेरी माँ	अभिनन्दन कुमार	४३
शहर के लोग	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानो चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

काशी हिंदू विश्वविद्यालय बनारस ने "वैश्विक परिदृश्य और प्रवासी हिन्दी साहित्य" विषयक एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का बहुत ही सफलतापूर्वक आयोजन किया. कैनेडा से मुझे विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था. कुलपति प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी जी, प्रो. अशोक सिंह जी, प्रो. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी जी, प्रो. आनंद वर्धन शर्मा जी, डॉ. मनोज कुमार सिंह जी, प्रो. चन्द्रकला त्रिपाठी जी व श्री तेजेंद्र शर्मा जी की हृदय से आभारी हूँ. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत के अति प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक है, जिसकी स्थापना महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी द्वारा सन् १९१६ में की गई थी. यह एशिया का एकमात्र सबसे बड़ा आवासीय विश्वविद्यालय है. पं. मदन मोहन मालवीय जी, डॉ. एनी बेसेन्ट एवं डॉ. एस. राधाकृष्णन् जैसे मनीषियों की दूरदर्शिता का जीवंत प्रतीक यह राष्ट्रीय संस्थान प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन दृष्टि का एक अद्‌भुत संगम है. अपने ज्ञानदीप्त संस्थापक द्वारा पल्लवित-प्रतिपादित शिक्षा की समग्र और पवित्रतामूलक पद्धति को नूतन आयामों से जोड़कर यह विश्वविद्यालय युवा वर्ग का उन्नयन तथा उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का संपोषण एवं सुविधाएँ प्रदान कर रहा है. यहाँ हिन्दी विभाग का प्रारम्भ वर्ष १९२० में लाला भगवान दीन ने किया था. यह देश का सबसे बड़ा और प्राचीन हिन्दी विभाग है. बाबू श्याम सुंदर दास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी के पठन-पाठन के साथ-साथ अकादमिक पाठ्यक्रम भी तैयार किया, जो बाद में खुलने वाले अन्य विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के लिए मानक बना.

वाराणसी में ही विद्याश्री न्यास के श्री दयानिधि मिश्र जी की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे 'हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक संवेदना और मूल्यबोध' अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं भारतीय लेखक-शिविर में बहुत ही सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया. उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि महामहिम श्री केशरीनाथ त्रिपाठी, राज्यपाल पश्चिम बंगाल थे. त्रिपाठी जी ने बहुत ही भावपूर्ण वक्तव्य दिया जो आभार सहित, उनकी सहर्ष अनुमति से वसुधा के अगले अंक में प्रकाशित होगा. त्रिपाठी जी ने पहले भी अपनी रचना से वसुधा को गौरवान्वित किया है. उनकी आभारी हूँ.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद्, भारत द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय रोमा सम्मेलन और सांस्कृतिक समारोह - २०१६ में मुझे कैनेडा से डेलीगेट के रूप में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था. लेखिका अंतर्राष्ट्रीय रोमा कल्चरल यूनिवर्सिटी की कैनेडा चैप्टर की डायरेक्टर है. वसुधा ने इसमें सम्मिलित रोमा प्रतिनिधियों की रचनाएँ प्रकाशित की हैं. इस समारोह की मुख्य अतिथि माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज, विदेश मंत्री, भारत सरकार थीं और विशिष्ट अतिथि थे श्री जोवन दाम्यानोविच, अध्यक्ष, विश्व रोमा संगठन-रोमानी पेन. बीज वक्तव्य दिया था डॉ. लोकेश चन्द्र, अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने. श्री राज शेखरन, महानिदेशक भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, श्री श्याम परांडे जी तथा डॉ. ऋचा सिंह, रिसर्च फाउंडेशन, दिल्ली, की इस आयोजन में बहुत ही अहम् भूमिकाएँ थीं. आयोजन के अंतिम दिवस पर बाहर से आए सभी रोमा प्रतिनिधि पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि जी के आवास पर उनसे मिलने आए. मुझे भी वहाँ आमंत्रित किया गया था. डॉ. श्याम सिंह शशि जी अंतर्राष्ट्रीय रोमा कल्चरल यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति हैं. हाल ही में हुई अपनी हृदय-शल्य-चिकित्सा के कारण वे समारोह में सम्मिलित न हो सके थे.

ईश्वर की कृपा तथा सभी शुभाकांक्षियों की शुभकामनाओं के फलस्वरूप पिछले वर्ष २०१५ में प्रकाशित मेरे उपन्यास 'लोक-नायक राम' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है.

नव वसंत का आगमन सब में नव-स्फूर्ति संचरित करे, विश्व नव-जागरण कल्याण-पथ पर अग्रसर हो, इसी मंगल-कामना सहित, सस्नेह, स्नेह ठाकुर

(वसुधा के प्रति व्यक्त किए गए महानिदेशक, भा.सां.सं.प. के प्रशंसनीय विचार)

आभार एवं धन्यवाद - संपादक

महोदया,

महानिदेशक, भा.सां.सं.प. ने आपके द्वारा संपादित एवं प्रकाशित **वसुधा** पत्रिका का जनवरी-मार्च, 2016 का अंक रुचि से पढ़ा और उन्होंने टिप्पणी की है कि 'विदेशों से प्रकाशित हिन्दी पत्रिकाओं में **वसुधा** निस्संदेह एक उच्च कोटि की पत्रिका है । इसमें सुप्रसिद्ध लेखकों और प्रतिष्ठित जनों के लेख संग्रहीत हैं । **वसुधा** पत्रिका के प्रकाशन के लिए आप प्रशंसा की पात्र हैं।'

माननीय राष्ट्रपति जी के हाथों 7 जनवरी, 2016 को 'हिन्दी सेवा सम्मान' प्राप्त किए जाने के लिए कृपया महानिदेशक महोदय की बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें ।

सादर,

पदमतलवार/ Padam Talwar
वरिष्ठकार्यक्रमनिदेशक (संगोष्ठी एवं सम्मेलन) / Sr. Programme Director (Conference & Seminar)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद/ Indian Council for Cultural Relations
आजाद भवन, आईपी एस्टेट /Azad Bhavan , IP Estate

नई दिल्ली /New Delhi -110002

दूरभाष \ Ph No: 011-23379463

माँ तू कितनी प्यारी है

आलोक कुमार सिंह

बंद किये ख्वाबों की पलकें, मै तेरे जीवन में आया ।
आँख खुली तो सबसे पहले माँ मैंने तुझको ही पाया ।।

तेरी गोद में मैंने अपना बचपन हँस कर खेला है ।
मुझे लगाकर सीने से हर दुःख को तूने झेला है।।

मेरे जीवन के बगिया की तू फुलवारी है।
माँ तू कितनी प्यारी है, माँ तू कितनी प्यारी है।।

याद मुझे आ जाता है वो बीता वक्त पुराना ।
डर जो लगे तो घबराकर तेरे आँचल में छिप जाना ।।

चोट मुझे लगती थी तकलीफ तुझे होती थी ।
मुझे दिलाती थी हिम्मत पर खुद ही तू रोती थी।।

मेरे खातिर तूने अपनी खुशिया वारी है।
माँ तू कितनी प्यारी है, माँ तू कितनी प्यारी है ।।

मेरी चिंता की रेखाएँ तू पहचान है जाती ।
मैं रहता हूँ चुप फिर भी माँ सबकुछ जान जाती।।

अनजानी राहो में था मैं कभी भी जब घबराता ।
तेरे आशीर्वाद के साये में था ख़ुद को पाता ।।

तेरे साथ तो मैंने कभी न हिम्मत हारी है ।
माँ तू कितनी प्यारी है, माँ तू कितनी प्यारी है ।।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्म-तिथि पर श्रद्धा-स्वरूप विशेष प्रस्तुति - संपादक)

अनिता शर्मा

(अनिता जी का उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से दृष्टिबाधित बच्चों को आत्मनिर्भर बनाना है. यदि कोई भी दृष्टिबाधित की सहायता करना चाहता है तो विस्तृत जानकारी के लिये voiceforblind@gmail.com पर सम्पर्क करें.)

रवीन्द्र नाथ ठाकुर उन विरल साहित्यकारों में से एक हैं, जिनके साहित्य और व्यक्तित्व में अद्‌भुत साम्य है। अपनी कल्पना को जीवन के सब क्षेत्रों में अनंत अवतार देने की क्षमता रवीन्द्रनाथ ठाकुर की खास विशेषता थी।

विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और साहित्य के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार विजेता रबीन्द्रनाथ ठाकुर, बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगपुरुष थे। वे एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार सम्मानित व्यक्ति हैं। ऐसे एकमात्र कवि हैं जिनकी रचनाएँ दो देशों में राष्ट्रगान स्वरूप आज भी गाई जाती है। भारत का राष्ट्र-गान “जन गण मन” और बाँग्लादेश का राष्ट्रीय गान “आमार सोनार बाँग्ला" गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म देवेन्द्रनाथ टैगोर और शारदा देवी के सन्तान के रूप में ७ मई, १८६१ को कोलकाता के जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी में हुआ था। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया लेकिन १८८० में बिना डिग्री हासिल किए ही स्वदेश वापस आ गए। सन् १८८३ में मृणालिनी देवी के साथ उनका विवाह हुआ।

बचपन से ही उनकी कविता, छन्द और भाषा में अद्‌भुत प्रतिभा का आभास लोगों को मिलने लगा था। उन्होंने पहली कविता आठ साल की उम्र में लिखी थी और १८७७ में केवल सोलह साल की उम्र में उनकी लघुकथा प्रकाशित हुई थी। पिता के ब्रह्म-समाजी होने के कारण वे भी ब्रह्म-समाजी थे। परन्तु अपनी रचनाओं व कर्म के द्वारा उन्होंने सनातन धर्म को भी आगे बढ़ाया। उन्होंने करीब २२३० गीतों की रचना की है। रवीन्द्र संगीत, बाँग्ला संस्कृति का अभिन्न अंग है।

आइंस्टाइन जैसे महान वैज्ञानिक, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर को ‘‘रब्बी टैगोर’’ के नाम से पुकारते थे। हिब्रू भाषा में ‘‘रब्बी’’ का अर्थ होता है ‘‘मेरे गुरू’’। यहूदी धर्म में भी गुरू को ‘‘रब्बी’’ कहा जाता है। आइंस्टाइन और गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर के बीच हुए पत्र व्यवहार में ‘‘रब्बी टैगोर’’ का साक्ष्य मिलता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर से अल्बर्ट आइंस्टाइन की मुलाकात सम्भवतः तीन बार हुई। यह तीनों मुलाकात अलग-अलग समय में बर्लिन में हुई थी। सर्वप्रथम टैगोर जी ने ही गाँधी जी को महात्मा कहकर पुकारा था। और नेताजी सुभाषचंद्र बॉस रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कहने पर ही गाँधीजी से मिले थे। १९१९ में हुए जलियाँवाला काँड की रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निंदा करते हुए विरोध स्वरूप अपना "सर" का ख़िताब वाइसराय को लौटा दिया था। रबीन्द्रनाथ टैगोर का वैश्विक मंच पर मानवता का मूल्य निर्धारण करने वाला सार्वभौमिक विचार आज भी विचारणीय है।

महाकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर प्रथम भारतीय थे, जिन्हें वर्ष १९१३ में उनके कविता-संग्रह ‘गीतांजली’ के अँग्रेजी अनुवाद पर साहित्य का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

१९०१ में टैगोर ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शांतिनिकेतन में एक प्रायोगिक विद्यालय की स्थापना सिर्फ पाँच छात्रों को लेकर की थी। इन पाँच लोगों में उनका अपना पुत्र भी शामिल था। १९२१ में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा पाने वाले विश्वभारती में इस समय लगभग छह हजार छात्र पढ़ते हैं। इसी के ईर्द-गिर्द शांतिनिकेतन बसा था। जहाँ उन्होंने भारत और पश्चिमी परंपराओं के सर्वश्रेष्ठ को मिलाने का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित शांति निकेतन साहित्य, संगीत और कला की शिक्षा के क्षेत्र में पूरे देश में एक आदर्श विश्वविद्यालय के रूप में पहचाना जाता है। इन्दिरा गाँधी जैसी कई प्रतिभाओं ने शान्तिनिकेतन से शिक्षा प्राप्त की है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत माता के अनमोल रत्नों में से थे जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से देश का नाम रौशन किया। कला और साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को भविष्य में भी एक धरोहर की तरह पूजा जायेगा। भावना, ज्ञान और कर्म जब एक सम पर मिलते हैं तभी युगप्रर्वतक साहित्यकार का जन्म होता है। ऐसे ही महान साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ७ अगस्त १९४१ को कलकत्ता में सारश्वत नियमानुसार इह लोक त्यागकर परलोक में विलीन हो गये। परन्तु साहित्यिक दुनिया में रवीन्द्रनाथ टैगोर सूर्य की भाँति सदैव प्रकाशमान हैं और इन्द्रधनुषी का तानाबाना लिये रवीन्द्र साहित्य की छटा आज भी चहुँ ओर विद्यमान है।

भारत के इस अनमोल रत्न को हमारा शत-शत नमन ।

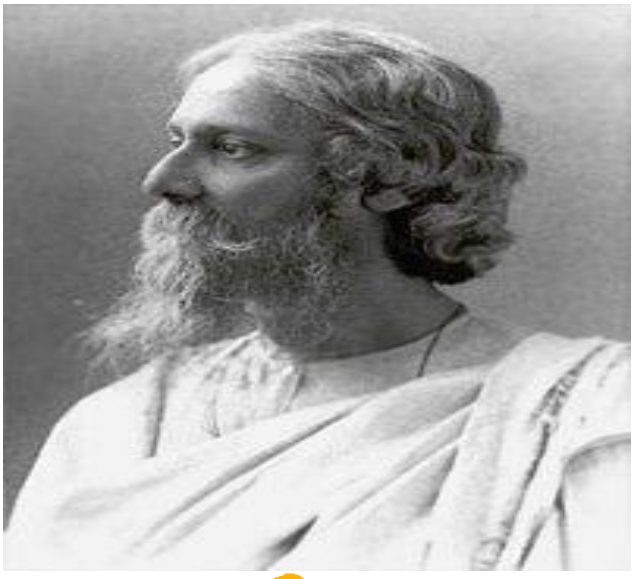

नकलधाम

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

आकाश के इंटर फ़ाइनल की परीक्षा का प्रथम दिन था। वह सुबह चार बजे ही उठ गया था। पर्चा अँग्रेजी का है और वह कोई कोताही नहीं बरतना चाहता। उसने टेबल लैम्प जलाई और चुपचाप पढ़ने बैठ गया। सरकार ने परीक्षा के दिनों में बिजली आपूर्ति रात भर करने का निर्णय लिया था सो बिजली कटी नहीं थी। उत्तर प्रदेश के पूर्वान्चल का यह जिला आज भी पिछड़ा ही माना जाता है, जिला – जौनपुर।

उधर आसमान में अभी उषा की लाली नहीं फैली थी लेकिन अँधेरा खुद को समेट रहा था, मानो उषा के स्वागत में पूरा आसमान बहोर रहा हो। रात शीत की वजह से मार्च महीने की यह भोर हल्के कोहरे से ढकी थी। इन दिनों मौसम के चरित्र में बड़ी तेज गिरावट दर्ज हुई है। बेमौसम बारिश से गेहूँ और दाल की फ़सल को बड़ा नुकसान हुआ है। कई किसान आत्महत्या कर चुके हैं और सरकार रोज़ राहत की घोषणाएँ कर रही है। लेकिन आत्महत्याएँ रुक नहीं रहीं, मानों सरकार के चरित्र पर भी इन गरीबों का विश्वास नहीं रहा।

फ़िर इन लोगों का भी कौन सा लोकतांत्रिक चरित्र रहा है? चुनाव आते ही इनका जातिगत स्वाभिमान जाग जाता और ये जातियों में बटकर समाजवाद, स्वराज्य और राष्ट्रीय विकास के नीले, लाल, केसरी और हरे रंग के झंडों के नीचे दफ़न होते रहे। अपनी पार्टी और नेता के लिए खाद बनकर उनकी राजनीतिक फ़सल को लहलहाते रहे। लेकिन पिछले लोकसभा चुनाव में जो हुआ वह उत्तर प्रदेश की राजनीति में कभी नहीं हुआ। "अच्छे दिनों" की आहट पर यहाँ की राजनीति ने नई करवट ली। इतनी सीटें तो उस पार्टी को मंदिर वाले मुद्दे पर भी नहीं मिली थीं वह भी पूरे देश से – स्पष्ट बहुमत ।

लेकिन स्पष्ट रूप से आम आदमी के जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन अभी नहीं आया था। अस्सी साल के मुरैला दादा भी इन दिनों ठगे-ठगे ही महसूस कर रहे हैं। हज़ारी की चाय गुंटी पर लड़के उन्हें छेड़ते हुए कहते, "का हो मुरैला दादा, वोटवा के का दिहे रह?....."

मुरैला दादा कहते, "धोखा हो गया बचई। सबके बैंक खाता मा अठ-अठ दस-दस लाख डालइ वाला रहेन। उहई कालधन वाला पईसा। लेकिन अबई केहू क मिला नाइ। अबई तो सब का खाता खुलवा रहे हैं । देखा आगे का होई?....."

लेकिन जो पढे लिखे थे वो जात-पात और व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर देशहित की बात का इन्हीं चाय की दुकानों पर पूरा समर्थन करते। उन्हें पूरा भरोसा था कि वर्तमान सरकार देश में आमूल परिवर्तन लाएगी और वह कर दिखाएगी जो आज तक इस देश में कभी नहीं हुआ। आकाश के पिता राजेश जी भी इन्हीं विचारों के थे। वे पड़ोस के गाँव में ही माध्यमिक विद्यालय में मास्टर थे। सब उन्हें राजेश मास्टर या मास्टर साहब ही बुलाते।

आकाश की परीक्षा जब से नज़दीक आयी है मास्टर साहब ने अपनी दिनचर्या में थोड़ा परिवर्तन कर लिया है। अब वे सुबह जल्दी ही उठ जाते और कूँचा लेकर दुआर बटोरने लगते, गाय को बाहर बाँध दाना-भूसा करते, मैदान जाते और दातून कर स्नान करते। यह सब करते हुए वे इतना शोर तो कर ही देते कि पत्नी भी उठ जाएँ और आकाश भी। लेकिन मास्टर साहब के लिए सुखद आश्चर्य यह था कि आजकल आकाश उनसे पहले ही उठा रहता। उसे इस तरह सुबह जल्दी उठकर पढ़ते हुए देख मास्टर साहब को बड़ी प्रसन्नता होती।

पत्नी पुष्पा जब चाय लेकर आयी तो मास्टर साहब बोले – "यह लड़का शुरू से ही बड़ा होनहार रहा है। पूरी मेहनत और लगन से पढ़ता-लिखता है। देख लेना एक दिन ज़रूर यह हमारा नाम रोशन करेगा। इसके कक्षा अध्यापक रवि बाबू भी कह रहे थे कि यह राज्य में प्रथम आने का दावेदार है। हाई स्कूल में पूरे जिले में प्रथम आया था, सिर्फ़ दो नंबर और मिले होते तो पूरे राज्य में तीसरी पोजीशन होती लड़के की।"

माता-पिता अपने होनहार की खूब प्रशंसा करते। ऐसे मौके पर दोनों की ही आँखों में एक ख़ास चमक होती। भविष्य के सपनों के ताने-बाने के बीच एक गर्व का भाव होता। धीरे-धीरे पूर्व दिशा में लालिमा छाने लगती और उषा की लाली धरती पर प्रकाश की किरणों के साथ नई सुबह, नए दिन के आगमन की सूचना देती। पक्षियों का कलरव मानों नए दिन की दिनचर्या हेतु किया जा रहा विचार विमर्श हो। हर तरफ नई उम्मीद, नई कोशिश और नए संघर्ष का वातावरण दिखाई पड़ने लगता है ।

पुष्पा ने उठते हुए मास्टर साहब से पूछा – "भइया कितने बजे जायेगा परीक्षा देने?"

"साढ़े दस बजे से परीक्षा है तो दस बजे तक सेंटर पहुँच जाये तो अच्छा है।" मास्टर साहब ने कहा ।

"सेंटर कहाँ है?" पुष्पा ने फ़िर सवाल किया

"यहीं गोंसाईपुर के गोकुलनाथ त्रिपाठी महाविद्यालय में। तीन किलोमीटर है यहाँ से। मैं मोटर साईकल से छोड़ दूँगा। तुम उसे नाश्ता करा के साढ़े नौं तक तैयार रहने को बोलो।" मास्टर साहब ने पुष्पा से कहा और उठकर सड़क की तरफ से हज़ारी की गुंटी की तरफ निकल पड़े अख़बार पढ़ने।

गुंटी पर पहुँचते ही जियावान नट ने मास्टर साहब को प्रणाम करते हुए तख्ते पर बैठने की जगह दी और ख़ुद उठ के खड़ा हो गया।

"और जियावन का हाल है?" मास्टर साहब ने अख़बार हाथ में लेते हुए पूछा।

"ठीक है सरकार, आप सब का कृपा बा।" जियावन ने हाथ जोड़कर कहा।

"मास्टर साहब बुरा न माने त एक ठो बात जानइ चाहत रहली ।" जियावन ने कहा

"अरे बोला कि, का बात है?" मास्टर साहब बोले।

"हमार नतियवा ई बार बरही क़लास का परिक्षा देई वाला बा, क़हत रहा बाबू पढ़ाई–लिखाई क़ कौनों काम ना बा। नक़ल करउनी दू हजार रूपिया दिहले पर किताब में देख–देख लिखई के मिली। ई बतिया सच है का?" जियावन ने पूछा ।

"अब का बताई जियावन। बतिया त सही है। कुकुरमुत्ता नीयर नया-नया पराइवेट स्कूल कालेज खुलत जात बा। ई सब स्कूल क़ मान्यता पइसा खियाइ-पियाइ के मिलत बा। नियम- कानून से काम ना होत बा। परीक्षा के सेंटर लेई ख़ातिर लाखन रूपिया खियावल जात बा, फ़िर जे लडिका लोग परीक्षा देई ख़ातिर आवत हयेन, ओनसी अपने हिसाब से पइसा वसूलत बाटेन। एक लाख लगाई के पाँच लाख कमात बाटेन। अपने स्वार्थ के चक्कर में लड़िकन क़ ज़िंदगी खराब कई देत हयेन। नैतिकता अउर सदाचार से केहू के कौनों मतलबई नाइ बा।" मास्टर साहब ने कहा ।

"अउ सरकारी स्कूल–कालेज में कामचोरी बा। मास्टर लोग पढ़ाई लिखाई छोड़ी के दिनभर राजनीति करत बाटेन। जे काम करई चाहत बा ओकरे खिलाफ सब एक हो जात बाटेन। आखिर तब का किहल जाई मास्टर साहब? आपई कौनों रास्ता बताओ?" जियावन ने हाथ जोड़कर कहा।

"अब क्या कहूँ भाई, मैं खुद मास्टर हूँ और इसी व्यवस्था में जी रहा हूँ, लेकिन आप की बात में सच्चाई है। यह देखिये, आज के अखबार में छपा है कोर्ट का आदेश। इलाहाबाद हाई कोर्ट ने आदेश दिया है कि सरकारी कर्मचारियों, विधायकों, सांसदों के बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढ़ाया जाए। तभी वे इन स्कूलों की खस्ता हालत को समझ सकेंगे। यही नहीं कोर्ट ने कहा है कि यदि उनके बच्चे कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ते हैं तो वे बच्चों की पढ़ाई पर होने वाले इस खर्च के बराबर राशि सरकारी खजाने में जमा कराएँ। कोर्ट ने यूपी के मुख्य सचिव को छह महीने में इस पर अमल सुनिश्चित करने के आदेश दिए हैं। कोर्ट ने कहा है कि सभी जनप्रतिनिधियों और सरकारी कर्मचारियों जिनमें चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी से लेकर आईएएस-आईपीएस तक शामिल होंगे और वे सभी कर्मचारी जो सरकार से सैलरी लेते हैं, के बच्चे सरकारी स्कूलों में ही पढ़ाए जाएँ। यह हुई बात जियावन। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने राज्य के प्राथमिक स्कूलों की खस्ता हालत को लेकर दायर याचिकाओं की सुनवाई के दौरान ये बात कही। कोर्ट की इस बात पर अमल हुआ तो वीआईपी और वीवीआईपी माने जाने वाले लोगों के बच्चे भी आम बच्चों की तरह सरकारी स्कूलों में पढ़ते हुए नजर आएँगे। अब आयेंगे अच्छे दिन, क्या समझे?" मास्टर साहब ने हँसते हुए कहा और उठकर घर की तरफ चल पड़े ।

घर पहुँच कर मास्टर साहब ने पत्नी पुष्पा से आकाश को तैयार कर बाहर लाने को कहा और खुद कपड़े बदलने अपनी कोठरी में पहुँच गए। आकाश पहले से ही तैयार था सो माँ-बेटे दोनों तुरंत बाहर आ गए। मास्टर साहब ने अपनी मोटरसाइकिल निकली और उसे पोंछते हुए आकाश से पूछा – "प्रवेश पत्र रख लिया है?"

"हाँ पापा, प्रवेश पत्र, पेन, दो फोटो, पेंसिल, रबर सब रख लिया है।" आकाश ने हँसते हुए उत्साह से कहा।

"इसने कुछ खाया भी, अब तीन-चार घंटे वहाँ हाल में कुछ मिलेगा नहीं ।" मास्टर साहब ने पत्नी पुष्पा से कहा।

"जी खा लिया है, इसे दही-शक्कर भी खिला दिया है और पानी की बोतल में ग्लूकोस बनाकर भी दे दिया है।" पत्नी पुष्पा ने जवाब दिया।

मास्टर साहब ने मोटरसाइकिल स्टार्ट की और आकाश तुरंत पीछे बैठ गया। बैठने से पहले उसने अपनी माँ के पैर छूए तो माँ आशीष देते हुए बोली "जुग-जुग जिय लाल। माताराानी सब ठीक करें। पेपर अच्छे से लिखना।"

आकाश ने भी हाँ में सर हिलाया और मोटरसाइकिल चल पड़ी गोंसाईपुर के गोकुलनाथ त्रिपाठी महाविद्यालय के लिए जो कि तीन ही किलोमीटर की दूरी पर था । जब तक स्कूल आ नहीं गया मास्टर साहब आकाश को समझाते रहे, "घबराना मत। पूरा पर्चा पहले ध्यान से पढ़ लेना। इधर-उधर मत देखना। कोई फालतू कागज अपने पास मत रखना। किसी से बोलना मत। कोई परेशानी हो तो कक्षा के गुरुजी से बताना। घड़ी पर भी नजर रखना। समय से सारा पर्चा खतम कर लेना। पर्चा पहले पूरा हो जाए तो भी पूरे समय बैठे रहना। और ऐसी ही कई हिदायतें जिनके जवाब में आकाश "जी पापा" कहकर चुप हो जाता।

थोड़ी ही देर में दोनों परीक्षा केंद्र पर पहुँच जाते हैं। विद्यालय के प्रांगण में विद्यार्थियों और अभिभावकों का जमावड़ा लगा था। अभी मास्टर साहब ने मोटरसाइकिल खड़ी भी नहीं की थी कि चपरासी पारस सिंह लपका उनकी तरफ। "पा लागी महराज़, आज इहाँ कइसे?" पारस ने मास्टर साहब के पैर छूते हुए पूछा।

"खुश रहा पारस, आकाश का पेपर यहीं है तो छोडने चला आया। ध्यान रखना जरा इसका।" मास्टर साहब ने कहा और आकाश की तरफ इशारा किया। आकाश ने भी पारस के पैर छूए।
"अरे आप बिलकुल चिंता न करें महराज़। घर की बात है। अउ ई विद्यालय त पूर्वान्चल क स्वर्ग है। ठकुरन क कालेज है अउ ठाकुर–ठकार आप देवता लोगन क खयाल न करीहई त नरकई जाबई करिहई।" पारस ने दाँत निपोरते हुए कहा ।

"ऐसी कोई बात नहीं। आप सम्मान देते हैं यही बड़ी बात है। त हम चली?" मास्टर साहब ने पारस से पूछा।

"हाँ महराज़, लेकिन तनी प्रिन्सिपल साहब से मिल लेता त ठीक रहात। कुली लड़िकन के गार्जियन मिलत बाटेन। साहब खुदई कहे बाटेन। चला मिलाई।" यह कहकर पारस ने मास्टर साहब का हाथ पकड़ लिया ।

"बहुत जरूरी हो तो मिलूँ नहीं तो आज जाने दीजिये। मुझे भी अपने विद्यालय जाना है। जैसा आप बोलें? कौनों खास बात?" मास्टर साहब ने पारस से पूछा ।

पारस मास्टर साहब को थोड़े एकांत में ले गया और बोला, "देखा गुरु, जइसे अपने इनहा चौकिया माई क धाम बा, बीजेठुआ धाम बा, कंजातीबीर धाम बा, हरशू बरम क धाम बा वइसे ई गोंसाईपुर के गोकुलनाथ त्रिपाठी महाविद्यालय नक़लधाम है, नक़लधाम। जेकर नंबर इहाँ आ ग उ जाना फ़्सट क्लास पक्का। अब धाम में दान-दक्षिणा त करहिन चाहे। जा जाके प्रिन्सिपल साहब से मिल ला। जादा नाहीं मात्र दू हज़ार रूपिया में लडिका का किस्मत बन जाई, जा।"

"ऐसा है पारस सिंह, ई सब हमका पता है। हम ख़ुद अध्यापक हैं। लेकिन पैसा वो दें जो नकल करवाना चाहते हों, जिन्हें अपने बच्चे की क्षमता पर भरोसा न हो। हमारा आकाश होनहार है, मेहनती है। उसे नकल की कोई सुविधा नहीं चाहिए। मैं चलता हूँ। आप के प्रिन्सिपल साहब से मुझे मिलने की कोई ज़रूरत नहीं है। ठीक है।" मास्टर साहब ने थोड़ा गुस्से में कहा ।

"अरे बाभन देवता, जरूरत आप को नहीं है लेकिन संस्था को तो है। कुल 2 लाख रूपिया देकर परीक्षा केंद्र का जुगाड़ बनल है। ई पइसा तो आप को देना ही पड़ेगा। समझ लीजिये अनिवार्य है। सब दे रहे हैं। हमको यही आदेश मिला है गुरु, नहीं तो ....?" पारस ने सर खुजलाते हुए कहा।

"नहीं तो क्या पारस? वो भी बता दो?" मास्टर साहब झल्लाते हुए बोले।

"महराज गुस्सा जिन हो। हम तो नौकर आदमी हैं। जो कहा गया है वही कह रहे हैं। आप तो सब जानते ही हैं, परीक्षा में बच्चों को परेशान करने के हज़ार तरीके हैं। फिर लड़के के भविष्य का सवाल है..... बाकी....जैसा आप ठीक समझें।" पारस ने दुष्टता पूर्वक हँसी के साथ कहा।

"यह तो हद है भाई। लूट है लूट। कानून नाम की कोई चीज ही नहीं रह गयी है। शिक्षा के मंदिर को रंडी के कोठे से भी बत्तर बना दिया है। कौन हैं प्रिन्सिपल साहब? चलो मिलता हूँ। समझ क्या रखा है? चलो।" मास्टर साहब ने तमतमाते हुए कहा।

"शांत हो जा गुरु। प्रिन्सिपल साहब श्री गुमान सिंह जी हैं। रिश्ते में हमरे फुफ़ा लगें। इनके ससुर ओम सिंह जी ही इस विद्यालय के सर्वेसर्वा हैं अब। ओम सिंह जी अरे अपने विधायक जी, उन्हीं का तो है यह नकलधाम।" पारस ने कुटिलता पूर्वक अपनी बात कही।

आगे बढ़ रहा मास्टर साहब का पाँव अचानक रुक गया। वे स्तब्ध होकर खड़े रहे। एक बार आकाश की तरफ देखा जो अपनी किताब में खोया हुआ था। मानों कुछ भी पढ़ने से छोडना नहीं चाहता हो। दूसरी तरफ अभिभावकों की कतार थी जो प्रिन्सिपल साहब के कमरे के बाहर लगी थी। किसी को

किसी से मानों कोई शिकायत ही नहीं थी। सब कुछ एक प्रक्रिया के तहत संपन्न हो रहा था। मौसम उमस भरा था और उस धूप में अब मास्टर साहब को बेचैनी होने लगी। पास ही नीम के पेड़ पर कोयल बोल रही थी जो इस समय बेसुरी महसूस हुई। पसीने की एक बूँद जब आँख पर पड़ी तो मानों मास्टर साहब की स्तब्धता टूटी। वे पारस की तरफ बढ़े और शांत भाव में बोले, "पारस मुझे किसी से नहीं मिलना। पैसे मैं तुम्हें दे देता हूँ तुम जिसे देना हो दे देना। ये लो पैसे।"

मास्टर साहब ने हज़ार के दो नोट जिस पर गाँधी जी मुस्कुरा रहे थे पारस की तरफ बढ़ा दिये। पारस ने तुरंत पैसे जेब के हवाले किये और बोला, "महराज आप निश्चिंत रहें, हम जमा कर देंगे। आप को किसी से मिलने की कोई ज़रूरत नहीं। आप लोगों की सेवा तो हम ठाकुर-ठकारों का काम ही है। आप जाइए, निश्चिंत होकर जाइए। पालागी महराज।"

पैलगी करते हुए पारस ने पैर छुए और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मास्टर साहब उसकी कुटिलता और अपनी मजबूरी पर मुस्कुराये और मोटरसाइकिल पर बैठते हुए बोले, "अच्छा पारस, विद्यालय का नाम गोकुलनाथ त्रिपाठी महाविद्यालय और करता धरता सब तोहरी बिरादरी, कुछ समझ नहीं आया।"

"अरे महराज! रामनरायन त्रिपाठी जी ने अपने पिता स्वर्गीय स्वतंत्रता सेनानी गोकुलनाथ त्रिपाठी जी के नाम पर यह महाविद्यालय बनवाया। ओम सिंह जी पहले सिर्फ़ मामूली ट्रस्टी थे लेकिन अपनी बुद्धि लगाकर और दूसरे सदस्यों को मिलाकार ख़ुद सर्वेसर्वा बन गए। लेकिन विद्यालय का नाम नहीं बदले। कहते हैं बाभन का नाम हो और हमारा काम तो क्या बुरा है। और हम तो यह भी सुने हैं कि जल्द ही वो मंत्री बननेवाले हैं। शिक्षा मंत्री का चांस है उनका। देखिये क्या होता है? तो चलूँ महराज परीक्षा का समय हो गया है, बाकी काम भी देखने हैं।" पारस ने अपनी घड़ी की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"हाँ, ठीक है जाओ।" मास्टर साहब ने भी अपनी घड़ी देखते हुए कहा। पारस तुरंत प्रिन्सिपल आफिस की तरफ चला गया। मास्टर साहब ने आकाश को आवाज दी जो नीम के पेड़ के नीचे खड़ा था। वह तुरंत पिता के पास आकर खड़ा हो गया।

"मैं जा रहा हूँ। दोपहर पेपर छूटने पर यहीं रहना मैं लेने आ जाऊँगा। ठीक है?" मास्टर साहब ने आकाश के सर पर हाथ फेरते हुए कहा।

आकाश ने पिता के पैर छुए और "ठीक है" बोलकर अपनी कक्षा की तरफ दौड़ गया।

मास्टर साहब थोड़ी देर तक उसे देखते रहे। फ़िर प्रिन्सिपल आफिस की तरफ नज़र दौड़ाई जहाँ अभी भी कतार लगी थी। उन्हें जाने क्यों लगा कि उनके मुँह के सारे दाँत गिर गए हैं और सिर्फ़ जीभ हर जगह घूम रही है। क्या अब काटने का कोई काम वो नहीं कर सकेंगे? तो क्या सिर्फ़ चाटना भर ही जीवन में रह जायेगा?

मास्टर साहब असहज हो रहे थे और पसीना और अधिक चूने लगा था। दोनों हाथों से हैंडल पकड़े मानों वो उस हैंडल को ही तोड़ देना चाहते हों। इतने में किसी गाड़ी के तेज हॉर्न ने उनकी स्तब्धता को भंग किया। कोई पीछे से चिल्लाया, "अबे सुनाई नहीं दे रहा है का? हट सामने से नहीं त चढ़ा देब। हट साले।"

मास्टर साहब ने तुरंत किक मारी और तेजी से वहाँ से निकल गए। परीक्षा तो आकाश की थी लेकिन फ़ेल हो गए थे मास्टर साहब। भ्रस्ट व्यवस्था की आँच गर्म लू की तरह वे अपने चेहरे पर महसूस कर रहे थे और जल्दी से अपने स्कूल पहुँचना चाह रहे थे, जहाँ के लिए देर पहले ही हो चुकी थी।

व्यापार बनती शिक्षा

अरुण तिवारी

शिक्षा बाजार हुई
मास्टरी व्यापार हुई
विद्यार्थी ग्राहक हुआ
ज्ञान अंक हो गया
विश्व गुरु का नारा
भजन-भोजन हमारा
सब 'जंक' हो गया
महाशक्ति का सपना
क्यूँ रंक हो गया ?
हा! ये कैसे हुआ ?
सोचो क्यूँ हो गया ?

आचार्य के आचार पर
क्यूँ कलुषता छा गई ?
धर्म गोरु हुआ,
पैसा जोरू हुआ
संतान पापा की
नजरों की पैकेज़ हुई
हा! ये कैसे हुआ ?
सोचो क्यूँ हो गया ?

?

लोक से होता है मिथक का सृजन

प्रभु जोशी

मनुष्य आदिम काल में जब चेतना के साथ प्रश्नाकुल हुआ तो उसने जानना चाहा कि वह कैसे पैदा हुआ? आकाश–पृथ्वी कैसे बने? दिन–रात किस तरह होते हैं? बादलों को कौन बनाता और बरसाता है? स्त्री गर्भ कैसे धारण करती है? मर कर आदमी कहाँ जाता है? ये तमाम प्रश्न, आद्य और अनुत्तरित थे, जिनके वाजिब और ठोस उत्तर वह चाहता था। बहरहाल, इन्हीं प्रश्नों के उत्तरों की खोज ने ही 'मिथकों' का सृजन किया। जैसा कि अमूमन कहा जाता है कि यह तो एक किस्म की यह प्रिमिटिव–स्टुपिडिटी (?) है, जबकि यह आदिम मूर्खता नहीं, बल्कि कहें कि ये ऐसी आद्य–बुद्धिमत्ता थी, जिसे लैवी स्ट्रौस ने 'तर्क–पूर्व' की उपज मानकर, 'आदिम जीवन की नैसर्गिक उत्कण्ठा' कहा और उसका गहरा 'सांस्कृतिक–समायोजनिक' विश्लेषण किया। यह उस आदिम समाज की 'अज्ञात से निबटकर अज्ञेय में प्रविष्टि की अदम्य जिजीविषा' थी। इसलिए, 'मिथक' कुछ–कुछ अभेद्य–सा जान पड़ने वाला अर्थ–व्यूह है।

यहाँ यह याद दिलाना ज़रूरी है कि मिथक संकल्पनात्मक निषेधों को जन्म देते हैं और निषेध, वर्जना का एक सुनिश्चित मानचित्र बनाते हैं। इसलिए, मिथकीयता और सह–भाव एक दूसरे पर अन्तर्निर्भरता भी रखते हैं। मसलन, गाय का मांस हिन्दुओं के लिए वर्जित है और सूअर का मांस मुसलमानों के लिए। इन 'वर्जनाओं' से दो समान लोकों का निर्माण हुआ। ठीक इसी तरह यौन संबंधों में भी अपनी–अपनी वर्जनाएँ हैं। मुसलमानों में केवल 'हमशीरा' से ही बचाव है। यूनान में सोफोकल्स का नाटक किंग आडिपस माँ और पुत्र के बीच भूल से, देवताओं के शापवश हुई 'यौन–रति' से उत्पन्न मानसिक पीड़ा को याद करिए। यह वर्जना के टूटने की ही पीड़ा का बिम्ब है। हिन्दुओं में 'सपिण्ड' और 'सगोत्र' में विवाह वर्जित है। इसी तरह की निषेधात्मक वर्जनाओं से 'लोक' का विस्तार हुआ है और अब भी होता है।

विज्ञान चाहे इसके विषय में कुछ भी कहे या कोई हिन्दू कितना ही सच्चा कम्युनिस्ट होने का दावा क्यों न करे, लेकिन वह अपनी सगी बहन से विवाह करने का साहस नहीं कर सकता, जबकि विज्ञान कहेगा कि प्रकृति भाई–बहन के पारस्परिक यौन–संसर्ग के विरूद्ध नहीं है। उसकी दृष्टि में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं है। यह मात्र एक 'मिथ' है। लेकिन, बावजूद इसके वह इसे स्वीकार नहीं कर पायेगा। क्योंकि यह वर्जना एक 'लोक' की सीमा बनाती है। यहाँ ऋग्वेद के प्रसंग का उल्लेख करना चाहूँगा। सूर्य पुत्र यम, अपनी भगिनी 'यमी' को यही बताता है कि वे भाई–बहन है। अतः यौन संबंध वर्जित हैं। यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि यह 'वर्जना' धर्मगत नहीं है। आप मध्य ब्राजील की शेरन्ते नामक आदिम–जाति को याद करिए, जो सभी नग्न रहते हैं, लेकिन उसमें एक माँ से जन्मे लड़के–लड़की के बीच यौन–संबंध वर्जित है– अर्थात् 'मिथ' का सृजन उस आदिम समाज में भी है। जहाँ 'धर्म' का प्रचलित अर्थ में कोई अस्तित्व नहीं है।

हज़रत मुहम्मद ने अरब प्रदेश में कबाइली भाईचारे से ऊपर उठ कर मानव–भातृत्व की भावना को दृढ़ करने के लिए 'इस्लाम' की नींव डाली। पर प्रश्न था कि मुसलमान कौन? कोई पहचान तो होनी चाहिए। हज़रत कोई परिभाषा कर सकते थे, कि जो इस्लाम को माने वह मुसलमान। लेकिन, पहचान के लिए यह पर्याप्त नहीं था। इसलिए हज़रत ने कलमा दिया, जिसमें हर हर्फ़ पर पूरा–पूरा बल था : 'अल्लाह को छोड़ कर कोई माबूद नहीं।' इतना भाग खुदा की वहदत के लिए काफी था। जिसके चलते निषेध या वर्जनाएँ अस्तित्व में आती है।

'मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।' कलमा के इस अंश पर लोगों ने आपत्ति की थी। परन्तु प्रश्न था, स्पष्ट पहचान के लिए कठोर अनुशासन का। इस आपत्तिजनक अंश पर बल दिया गया। अरब–फिलिस्तीन प्रदेश के पुराने इतिहास में येरूसलम 'तीर्थ' था और रविवार 'पवित्र–दिन'। पर, ऐसा मानने से इस्लाम, यहूदी और ईसाई धर्म में घुलमिल जाता। इसी कारण 'मक्का–शरीफ' और

'शुक्रवार' को मान्यता दी गई। ईद, रमज़ान, नमाज़, जक़ात और विवाह आदि से सम्बद्ध वर्जनाएँ तय की गई, ताकि 'मुसलमान' की सही पहचान और परिभाषा बन सके।

यह समूह की समानता का मिथकीय–विधान था। 'मिथक' के बारे में हममें से अधिकांश का यह ख़याल है कि अमूमन इसे धर्म ही आविष्कृत करता रहा आया है। जबकि वस्तुतः 'मिथक' का सृजन धर्म नहीं, 'लोक' करता है। धर्म की भूमिका तो उसके मात्र स्वीकार और संरक्षण की रही है। 'मिथक' आदिम समाज में, 'मंगल की कामना' से पैदा हुए। और जब ये पैदा हुए तब तक, उन आदिम–समाजों में धर्म के तत्व तो प्रकट भी नहीं हुए थे। अतः मिथक की निर्मिति का क्रम, तब से चला आता रहा है। जी हाँ, पैगन रिलीजन्स के पहले से। पीयरे मराण्डा ने, इसीलिए मिथक को अर्द्धजीवित और अर्द्ध–विस्मृत (हॉफ लिविंग एण्ड हॉफ फारगॉटन) भाषा कहा है, जो अव्यक्त और अप्रकट की ओर संकेत करती है। क्योंकि, मिथक तर्क से अ–प्रमाणित रहने पर भी, 'लोक' में स्वीकृत रहते हैं। मिथक से जीवन नहीं चलता, लेकिन जीवन नहीं चलता, इसीलिए मिथक जन्म लेते हैं और लोक में सांस लेते हैं। मिथक बदले जा सकते है, पर उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता।

आदम–ईव के मिथक को लें तो संभवतः यह यहूदी–ईसाई आदि धर्मों से पुराना है। पाषाण–युगीन जन–मन ने अपने आद्य माता–पिता की कल्पना की होगी, यह समझने के लिये कि अंततः यह मातृत्व–पितृत्व कहाँ, कब, कैसे प्रारंभ हुआ? कौन था, प्रथम पिता? कौन थी, प्रथम माता? .....कुल मिलाकर युगों के पश्चात् आदि मानव ने आदम–ईव की सर्जना की होगी। लेकिन, यह सब हुआ उन प्रश्नों के समाधान के लिए, जो उसने अपने से पूछे थे? इसी से 'मानव कुल' का निर्माण होता है। ऋग्वेद.. 'मैं अल्प और अकेला नहीं, भूमा' हूँ', यह विचार भी मानव कुल की संरचना का सूत्र ही है।

मिथक की परिभाषा इतनी व्यापक है कि इसकी सहायता से पाषाण कालीन देव–गाथाओं से लेकर, प्रकृत एवं मध्यकालीन धर्मगाथाओं तक और आज हम जिन जीवन्त मिथकों से घिरे है और उनका मिथकीय स्वरूप हम पहचानते भी नहीं। लेकिन, इस सबके बीच यह बहुत ध्यान देने योग्य बात है कि वे अबोधगम्य को बोधगम्य बनाते हैं।

मिथक का सृजन इतिहास नहीं करता, इसके विपरीत मिथक अपनी अदम्य शक्ति से इतिहास को चलाते अवश्य हैं। यूनानी मिथकों का इतिहास के निर्माण में बहुत हाथ रहा है। अपोलो और डायनीसस उस देश के प्रमुख देवता हैं। जूपिटर अथवा जीयस सभी देव–देवियों का पिता और शासक है। ये देव ओलिम्पस (भारतीय सुमेरू पर्वत) पर निवास करते हैं। होमर ने इस मिथकीयता को अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के साथ पवित्र–इतिहास का रूप दे दिया। जब 'यूनान का इतिहास' जैसा पद कहा जाता है, तो उसका अर्थ हुआ–समूचा पश्चिमी योरपीय सांस्कृतिक सामाजिक और आध्यात्मिक इतिहास। वहाँ की देव–कथाओं को समझे बिना यूनान के इतिहास को समझना असंभव है। ईसाइयत ने आकर पुराने मिथकों की नींव पर नए मिथक और लोगों को विश्वास दिए।

स्मरण रहे, क्रॉस, ईसा का पुनरूज्जीवन, बलिदान, ईश्वर–पुत्र की कल्पना, बपतिस्मा, मेरी देवी की दिव्यता, संतों का चमत्कार आदि की मूल-भूमि या तो रोमन यूनान है अथवा मिस्र येरूस्सलम-फिलिस्तीन-सीरिया आदि देशों की संस्कृतियाँ, जो स्पष्ट ही सुमेर–बेवीलोन–काल्डिया–अक्कड़–फारसी आदि से प्रभावित हुई थी।

कुल मिलाकर, एक व्यापक और सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार मिथकीय अवधारणाओं ने सामाजिक–विवेक को उसकी द्वन्द्वात्मकता में समझने की युक्तियाँ दी हैं। जीवन–मृत्यु, पाप–पुण्य, विधि–निषेध, देव–दानव, प्रकाश–अंधकार, इन द्वन्द्वात्मक युगलों की सृष्टि कृत्रिम नहीं, बल्कि प्रकृत धर्मों (पैगन–रिलीजन्स) के आविर्भाव के पूर्व की हैं। तेज़ और तमस् की समझ मानव चेतना के प्रथम प्रभात से हमें है।

अंत में, कहने की आवश्यकता नहीं कि 'स्थूल' से युग नहीं बनता, इसके नीचे जीवन के अतल में समाई हुई शक्तिया हैं, जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। पचास साल पहले जो

भौतिक शास्त्र हमें सच लगता था, कांक्रीट लगता था – वह अब और सूक्ष्म हो चुका है। नैनोटेक्नोलॉजी के अवतरण ने तो बहुत सारे वैज्ञानिक–अंधविश्वास को छिन्न–भिन्न कर दिया है। लगता है फिजिक्स तो मेटा फिजिक्स की तरफ देख रही है। अब हमारे सामने सबसे बड़ा संकट तो ज्ञान–बोध का संकट है। आज के मनुष्य को लगता है कि मानस–सर्जनाओं से सत्य को चारों ओर से घेरे हुए शून्य को भरने के लिए मनुष्य जितना बेचैन आज है, पहले कभी नहीं था । अनंत और विराट् का अनिर्वचनीय रहस्य उसके चारों ओर है और हम रोज़–रोज़ नए मिथकों का सृजन कर रहे हैं।

सूक्ष्म स्तर पर स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, राष्ट्रीयता, राजनीतिक विचार धाराएँ, वैज्ञानिकवाद ये हमारे मौजूदा समय के मिथ हैं। हम जिस राजनीतिक तंत्र में जी रहे हैं – बक़ौल रोज़र गेरादी के वह खुद एक 'बुर्जुआ डेमोक्रेटिक मिथ' ही है।

हमारा प्रेम

सपना भट्ट

हमारा प्रेम
लिपियों, ध्वनियों की
नियोजित व्यवस्था नहीं
वर्णमाला के ढ़ाई आखरों में पिरोया
प्रीत का अभीष्ट स्वीकार भी नही।
और न ही
यह है जन्मचक्र के
बत्तीस गुणों की साम्यता ही।

बल्कि
यह तो हम दोनो के मध्य
हज़ार असहमतियों का सिलसिला है।
जिनसे सहमतियाँ माँगनी हैं।
महासागरों की अलघ्य दूरी है
जिसे पार करना है।
एक लंबा उदास सिसकता अंतराल है
जो भरा जाना है ।
आँसुओं की खारी नदी है
जिसे मुस्कुराहट की चाशनी से
पागा जाना शेष है अभी।

प्रेम

डॉ. शिप्रा शिल्पी

प्रेम
आकाश है
मधुमास है
माँ की आँखों में
बाहर जाते बच्चों का
संताप है.
प्रेम
हास है
परिहास है
बहन के हृदय में
भाई का आभास है.
प्रेम
प्यार है
पत्नी की मीठी झिडकी
प्यारी मनुहार है.
प्रेम
विचार है
पिता का अनुशासन
रगों में बहता संस्कार है.

प्रेम
तरंग है
प्रेमिका की मीठी अठखेली
प्रेमी हृदय का रंग है.
प्रेम
साथ है
दोस्त का विश्वास
दोस्ती का हाथ है.
प्रेम
असीम है
स्वच्छन्द उन्मुक्त पावन
किसी एक रिश्ते का नहीं
हर रिश्ते का आधार है.
प्रेम
बस प्रेम है
दिल से दिल तक जाता
कोमल सुखद एहसास है.

गंगा की महिमा जाने-अनजाने साहित्यकारों की दृष्टि में

डॉ. एन. के. चतुर्वेदी

शैलेन्द्रनंदिनी, शम्भुशिखर पर वास करने वाली, शस्यश्यामलांचल वाली, विष्णुपद से उत्पन्न, त्रितापहारिणी, तुषार-किरीटी नगराज की गोद में अपनी शिला-भगिनियों के साथ किलोलें करनेवाली, अवनी-तलमें अवतीर्ण होकर आर्यावर्त्त को आप्यायित और प्लावित करनेवाली गंगा नदी का भारतीय नदियों में सर्वाधिक विशिष्ट स्थान है। गंगा के पिता हिमालय जिस प्रकार पृथ्वी के लिए मापदण्ड हैं उसी प्रकार गंगा सागराम्बरा भारत-वसुन्धरा की कटि-किंकिणि हैं। विश्ववन्दनीया और प्रात: स्मरणीया माँ गंगा पतितों को तारने वाली हैं और इनके जल के एक बूद के सेवन से मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा भारतीय साहित्य में वर्णित है।

गंगा की महिमा का वर्णन प्राचीनकाल से ही भारतीय मनीषियों एवं साहित्यकारों ने किया है। आधुनिक भारतीय साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं 'गंगा की शोभा' नामक दीर्घ कविता लिखी थी, तो रीतिकाल के अंतिम साहित्यकार जगन्नाथदास रत्नागर ने 'गंगावतरण' नामक अति प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा जिसके लिए उन्हीं के नाम पर दिया जाने वाला 'रत्नाकर' पुरस्कार एक बार स्वयं उन्हीं को प्रदान किया गया था. ऐसा इतिहास में विरला ही उदाहरण मिलता है कि जो व्यकित कोई पुरस्कार स्थापित करे वह उसको भी प्राप्त हो जाय। हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालखण्ड में ऐसे कई जाने-अनजाने साहित्यकारों के नाम आते हैं जिनकी अच्छी पहचान तो गद्य लेखन के क्षेत्र में थी परन्तु उन्होंने पद्य रचना भी की और गंगा की महिमा का गुणगान किया। इस क्षेत्र में पहला नाम हिन्दी के राष्ट्रवादी कवि मैथिलीशरण गुप्तजी का आता है जिन्होंने गंगा की महिमा एवं उनके महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा था कि -

जय गंगे, आनंद तरंगे, कलरवे,
अमल-अंचले, पुण्यजले, हरि-संभवे!
सरस रहे यह पुण्यभूमि तुमसे सदा,
हमसबकी तुम एक चलाचल सम्पदा।

प्रसिद्ध पत्रकार, कुशल सम्पादक एवं मूर्धन्य साहित्यकार शिवपूजन सहाय ने गंगा की महिमा का वर्णन इन शब्दों में किया -

"त्रिभुवन-तारिणी जाह्नवि गंगे! पतितोद्धारिणि विमलतरंगे!
सुरापगे मन्दाकिनि नन्दिनि! सुधे त्रिपथगे कलुष-निकंदिनी!
सरिद्वरे जगतीतल-धन्ये! शीतल-शीकर-शालिनि पुण्ये!
धूज्जटि-जटा-विद्दारिणी शुभ्रे! भागीरथि! कुरु मंगलमये!

उन्होंने तो गंगा की महिमा का बखान करते हुए यहाँ तक लिख दिया कि -

काहूने न तारे ताहि गंगा! तुम तारे,
आज जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।

नाटक सम्राट और 'कामायनी' जैसे कालजयी महाकाव्य के लेखक काशी निवासी जयशंकर प्रसाद जी ने भी भारत में गंगा के सांस्कृतिक एवं आर्थिक महत्व को ध्यान में रखते हुए लिखा कि -

ऋद्धि-सिद्धि तू अचल हिमालय से ले आयी,
उर्वर भारत-वसुन्धरा तू करने आयी ।
सींच रही है स्नेहमयी दे जीवन धारा,
सकल ताप तेरी पुनीत लहरों से हारा।
कानन मुखरित हुए द्विजों के श्रुति-कलरव से,
पुण्य हुए कितने प्रवचन भव में अभिनव से।
रह न सकेगा कभी देश यह भूखा-नंगा,
मंगल जल-कण जब तक तुझमें बहते गंगा।

प्रसिद्ध समाज सुधारक एवं वैष्णव विद्वान राजेन्द्र नाथ नंदी "रसिकेन्द्र", जिनका जन्म १८८२ई. में पाबना जिला वर्तमान बाँगलादेश में हुआ था, जो कि अपनी साधारण संस्कृत भाषा लेखन शैली के लिए प्रसिद्ध थे, ने भी गंगा का आह्वाहन करते हुए लिखा था कि -

देखी थी छटा जो नृप शान्तनु ने ज्योतिमयी, उसी मनमोहिनी छटा को छिटकाओ, गंग!
रसिकेन्द्र सत्य-व्रत-धारी, ब्रह्मचारी वर-वीरता-विहारी भीष्म-पुत्र प्रकटाओं, गंग!
लाली चढ़े देश में, बहाली बढ़े चारों ओर, फैले हरियाली, सुख-लता-लहराओ, गंग!
अनय, अधर्म के विचारों को पछाड़ो आ के, धर्म के सुधार को सु-धार को बहाओ, गंग!
खूब सो चुकी हो महासागर के अंचल में, होकर सजग मोह-नींद बिसराओ, गंग!
स्वार्थ-रत-नागर को सीख सिखलाओ कुछ, आगर गुणों की नव-नागरी कहाओ, गंग!
छार-छार करने को पापों के कछार कुंज, धर अवतार एक बार फिर आओ, गंग!

१९३०ई. में बिहार के भागलपुर जिले से मिथिला प्रेस, कृष्णगढ़, सुल्तानगंज से "गंगा नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ जिसके प्रधान सम्पादक रामगोविन्द त्रिवेदी एवं सम्पादक गौरीनाथ झा एवं शिवपूजन सहाय थे। इस पत्रिका के मुख्य संरक्षक श्रीमान कुमार कृष्णानंद सिंह बहादुर थे। इस पत्रिका के लिए अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ने जो शुभकामना भेजी थी उसमें गंगा की महिमा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि -

अंग-अंग होवें प्रिय पावन-प्रसंग-पूत, रुप अवलोकनीय रंगलोक न्यारा हो।
तरल तरंग में हों मंजु भावनाएँ बसी, संचित विभूति में भरित भाव प्यारा हो।।
"हरिऔध" अंक अलौकिकता-निकेतन हो, कमनीय-कला-कान्त कलित किनारा हो।
सारा मल हरे सतोगुण का सहारा बने, सुधा से सरस गंगा तेरी रस-धारा हो।।
भारत-धरा में वह ऐसी भावनाएँ भरे, पूत हो सपूत भाव-पूत भिखमंगा हो।
उसके विचार के प्रवाह में प्रवाहित हो, धनिक उदार भूतिमान भूख-नंगा हो।।
"हरिऔध" रस की प्रसूति से सरल बने, सुख भरपूर मिले दूर भव-दंगा हो।
पवन-प्रसंगा रंगा रंग रंजनाओं-भरी, गंगा के समान "गंगा" तरल-तरंगा हो।।

१९३१ई. में बिहार निवासी जगदीश झा 'विमल', जिनकी १९२९ई. में लिखित 'आशा पर पानी' पुस्तक अत्यन्त ही चर्चित हुई थी, ने भी गंगा की महिमा का गुणगान किया और गंगा को भारत के समस्त कलुष दूर करने वाली नदी के रुप में निरूपित किया था और लिखा कि -

जीवन की ज्योत्सना-रेखा सी, वसुधा का अनुपम श्रृँगार।
सगर-सुतों की भस्म-राशि का, करने चली सफल उद्धार।।

कलि-मल कलुष कोष काया की काई, कठिन पाप परिताप,
चली मिटाने स्वर्गलोक से, भूप-भगीरथ-पुण्य-प्रताप! ।।
ब्रह्म-कमण्डलु-निर्गत निर्झर, प्रक्षालन-पटु हरि-पद-पद्य।
चन्द्रचूड़-राशि-लेखा-चुमिबत, सिद्धि-साधना-साधन-सद्य।।
यम-यातना भगाती भव से, तुरत मिटाती विषम विषाद।
जीवन-ज्योति जगाती जग में, धन्य अलौकिक पाथ-प्रसाद।।
अंचल जटित तीर्थ-रत्नों से, तपोवनों से हरित दुकूल।
रमा-जनक-रत्नाकर-रंजनि, गंगा गौरव-मंगल-मूल।।

भारत देश में अँग्रेजी राज में जिस प्रकार अज्ञानता और सुसुप्तता व्यापत थी, उसे दूर करने के लिए १९३० के दशक में एक साहित्यकार ने जिनका वास्तविक नाम तो ज्ञात नहीं है परन्तु वे 'चकाचक' उपनाम से कवितायें लिखते थे, 'गंगा-स्तव' लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि -

वर्तमान भारत के सारे पातक दूर भगा दे।
सुप्त शिथिल है देश, श्रान्तिहर उसको शीघ्र जगा दे।।
उज्ज्वल नीर क्षीर-सा मीठा-सा रस-धार बहा दे।
कूल-द्रुम सा घोर अविद्या का दृढ़ मूल ढहा दे।।
अज्ञानों का शैल फोड़कर, कलकल नाद सुना दे।
ला दे पुन: वही युग गंगे! भारत स्वर्ग बना दे।।
दिग्दिगन्त में धर्म-सनातन का झण्डा फहरा दे।
'कृष्ण' और 'गोविन्द' नाम की जग में धूम मचा दे।।

१९३१-३२ई. में जनार्दन मिश्र "परमेश" जी ने, जिनके बारे में अधिक जानकारी का अभाव है, 'गंगावतरण' नामक कविता लिखी थी जिसकी पंक्तियाँ जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा लिखित 'गंगावतरण' की पंक्तियों से काफी कुछ साम्य रखती हैं; अपनी अत्यन्त ही सरस पंक्तियों में "परमेश" जी ने गंगा के बारे में लिखा था कि -

नित निसर्ग के कलित कोड़ में, कीड़ा-कौशल थी करती।
नादमयी निर्मल निर्झरणी, लहरी स्वर की थी भरती।।
उस एकान्त देश में कोई, सरस कान्त पद श्रुति-अभिराम।
शून्य गगन को सुना-सुनाकर, कविता करता था अविराम।।
सुरकन्या को सप्त स्वरों की, शिक्षा का करती थी दान।
धन्य भगीरथ कर्मवीर ने, किया तपोबल से आह्वान।।
दिव्य लोकसे उतरी भू पर, स्वर्विभूति को लेकर संग।
वितरण करती वसुधा को अब, 'गंगा' अभिनव सुधा-प्रसंग।।

इसी कड़ी में जयपुर, राजस्थान के संस्कृत के दिग्गज आचार्य महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी का भी नाम आता है जिन्होंने गंगा की महिमा गायी और अपनी भावना व्यक्त करते हुए लिखा -

"गोविन्द-वदनाम्भोजान्निर्गच्छन्ती यमदमुता।
"गंगा" पुनातु भुवनं कलिकल्मष नाशिनी।।

उपर्युक्त वर्णित साहित्यकारों एवं उनकी पंक्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गंगा नदी का भारत में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है और न केवल प्रचीन एवं मध्यकालीन अपितु आधुनिक साहित्यकारों एवं कवियों ने भी गंगा की महिमा को बखाना है। गंगा का भारत के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रगति में क्या महत्व रहा है, इस बात को भी उजागर किया है। यदि भारत की पुरानी पत्र-पत्रिकाओं को खँगाला जाय तो निश्चय ही अनेक साहित्यकारों एवं उनकी पंक्तियों पर प्रकाश पड़ेगा जो कि गंगा पर लिखी गई हैं।

फ़्रांस्वा एम. वोल्तेयर

('भारत क्या है' से उद्धृत)

"मैं सुनिश्चित हूँ कि खगोलशास्त्र, ज्योतिष,
देहांतरण आदि सारा ज्ञान गंगा के तट से
आया है. यह बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है कि
कोई २५०० वर्ष पूर्व, पाइथागोरस निश्चित
ही रेखागणित सीखने सामोस से गंगा गया था.
किन्तु उसने यह कठिन और अनजान यात्रा कभी
न की होती यदि योरोप में ब्राह्मणों के विज्ञान
की प्रतिभा की धाक वर्षों से न जमी होती."

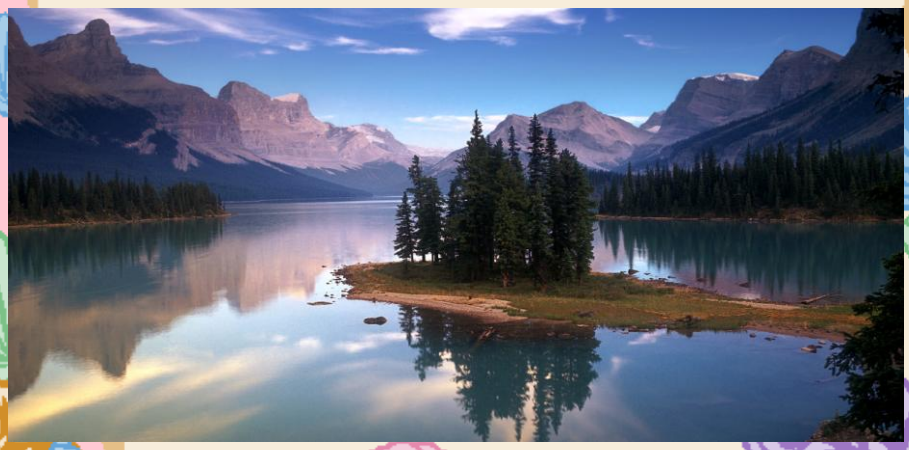

गफूर का बगीचा

रतन वर्मा

कौन जानता था कि एक दिन वही अमरूद का पेड़ बेटा बनकर गफूर के बुढ़ापे की लाठी बनेगा। खुद गफूर या उसकी बीवी सकीना भी नहीं। वैसे भी किसी ख्वाहिश या आने वाले कल के किसी सपने के तहत उन्होंने कभी उसकी जड़ में एक बधना पानी ही डाल दिया हो, ऐसा कुछ भी नहीं किया था उन्होंने । हाँ, आँधी-पानी झेलते हुए वह पौधा जब कमर की उँचाई तक बड़ा हो गया, तब सकीना ने महज समय काटने की नीयत से उसका थोड़ा ख्याल रखना शुरू किया था ।

वैसे कमी भी किस बात की थी उन्हें कि आने वाले कल के लिए कोई सपना पालते वे? और नहीं तो किसी आम या अमरूद के पेड़ की शक्ल में ? पर हाँ, एक सपना जरूर पाल रखा था उन्होंने। एक अदद बेटे का सपना।.....जो लाख पीर-पैगम्बर, गंडे-ताबीज, मन्नत-इबादत के बावजूद पूरा नहीं हो पाया था उनका। मन में हर लम्हा एक ही मलाल रहता गफ़ूर के कि उसके खानदान को आगे कौन बढ़ायेगा, कौन रखेगा उसके नाम को जिन्दा और कौन बनेगा मियाँ बीबी के बुढ़ापे की लाठी? नहीं तो बाकी सारा सुख तो था ही उन्हें। इलाके का सबसे नामी राज मिस्त्री था गफूर.....और दूसरे मिस्त्रियों से महँगा भी। ऊपर से ठसक ऐसी कि क्या मजाल कि लाट-गर्वनर भी उसे "गफूर जी" या "मिस्त्री जी" की जगह "ऐ गफूर" या "ऐ मिस्त्री" कहकर पुकार ले और गफूर चला जाए उनके यहाँ काम करने। बावजूद इस ठसक के, काम की कभी कोई दिक्कत नहीं रही गफूर को। सो रोज की अच्छी खासी आमदनी और खाने के लिए सिर्फ दो प्राणी। इस प्रकार गृहस्थी की गाड़ी ठाठ से चलती रही थी दोनों की। धीरे-धीरे तो गफूर भूलता चला गया था, उस एक अदद बेटे के सपने को जो हर लम्हा टीस बनकर सालता रहा करता था उसे।

लेकिन अपनी बीबी सकीना का क्या करता वह जो आये दिन अपने आँसुओं से उसे बेऔलाद होने का एहसास कराती ही रहती। खास तौर पर तबसे तो और भी ज्यादा, जब से उसकी खास सहेली जानकी ने एक बेटे को जन्म दिया था । वैसे, जानकी को बेटा हुआ है, यह जानकर खुद जानकी को क्या खुशी हुई होगी, जितनी खुशी सकीना को हुई थी। बल्कि सारी रात जानकी के दर्द के दौरान उसके घर जा-जाकर हाल-समाचार लेती रही थी वह। सहेलियाँ होने के साथ-साथ दोनों के बीच पारिवारिक रिश्ता भी जो था । इतना ही नहीं, घर भी अगल-बगल ही थे दोनों के । अगर वश चलता सकीना का तो सारी रात अपनी सहेली के पास ही जमी रहती। पर जानकी की सास ने घुसने ही न दिया था उसे कोठरी में ।

पहले तो सकीना को लगा था कि कोठरी में उसे घुसने न दिया जाना, उसके मुसलमान होने की वजह से था, मगर जब अमीना चाची को कोठरी से निकलते देखा उसने तब उनसे पूछ ही बैठी वह "काहे अमीना चाची, मैं मुसलमानिन हूँ तो आप भी तो....."

"अरे काहे का हिन्दू - मुसलमान ? तेरे को नहीं घुसने देने की दूसरी वजह है।"

"सो क्या"....?

"अरे तू क्या जाने..... सौ टोटके होते हैं इनके । बताऊँगी तो तेरे को 'जबूर' लगेगा ।"

"नही, बताइये न ।"

"तो सुन.....तू ही बड़ा लल्लो-चप्पो किये रहती है जानकी के, पर वह तुझे क्या समझती है, जानती है ?"

"क्या ?"

"बाँझ समझती है बाँझ, समझी ? उसी ने मना कर रखा है अपनी सास को।"

"पर उसे भी तो यह पहला ही बच्चा है । वह भी इतने दिनों के बाद।" भले ही शादी के आठ वर्ष हो गये थे सकीना के, पर बच्चे की उम्मीद छोड़ी नहीं थी उसने ।

"ऐंह दो बच्चा इसके पहले नुकसान हुआ था सो ? तेरी तरह सूखी तो नहीं है न।"

सुनकर चेहरा उतर गया था सकीना का ।

"अरे नहीं रे, यह मैं नहीं कह रही, जानकी की सास कह रही थी। वह तो यह भी....."

लेकिन उसकी बात सुनने के लिए सकीना रूकी नहीं थी वहाँ - सुबकती हुई सीधे अपने घर की ओर भाग खड़ी हुई थी। फिर उस वक्त से लेकर सुबह तक सुबकती ही रही थी। सुबह चरित्तर भाई जान की आवाज पर भागती हुई दरवाजे की ओट लेकर अपने मरद और चरित्तर की बातचीत सुनने लगी थी। चरित्तर जानकी का घरवाला था और गफूर का हमपेशा तथा खास दोस्त।

"हाँ भाई चरित्तर, सुना खुशखबरी .....क्या हुआ .....बेटा या बेटी?" गफूर की आवाज।

"बेटा हुआ है गफूर मियाँ, बेटा।"

"तो स्साले वहाँ क्यों खड़ा है? आ, गले लग। यार क्या तीर मारा है? सीधे बेटा। अल्लाह तकदीर दे तो तेरे जैसी। चल तेरा नाम चलाने वाला आ गया....."

सुनकर सकीना को भी कम खुशी नहीं हुई थी । उस खुशखबरी ने क्षणांश में ही उसके गम को सोख कर, होठों पर खुशी के फूल खिला दिये थे। फिर से सारे गिले-शिकवे भूल कर भागी थी वह जानकी के घर। मन में एक दूसरी ही बात - हो न हो अमीना चाची उसकी और जानकी की दोस्ती से जलती हों..... इसीलिए अनाप-सनाप कान भरती रहीं.....

लेकिन जब जानकी के पास पहुँची वह, खातिर तो उसने मुस्कुरा कर किया, पर जब सकीना बच्चे को गोद में उठाने लगी, बगल में सो रहे बच्चे को अपने आँचल से ढँक कर बोल पड़ी, "तू बैठ न सकीना, बच्चा कोई भागा जा रहा है। थोड़ा बड़ा होने दे, फिर जी भर कर खेलाती रहना ।"

यानी, एक तरह से अमीना चाची की बात को सच जैसा साबित कर ही दिया था जानकी ने भी। नहीं तो बच्चे को गोद में उठाने के लिए उसके बढ़े हाथ को यूँ बेदर्दी से रोक क्यों देती वह भला ?

बाद में तो सकीना को यह भी पता चला था कि छठ्ठी में जो उसने बच्चे के लिए कपड़े दिये थे, वह भी जानकी ने मग्घा डोम की बहू को दे दिये थे कि उसका होने वाला बच्चा पहनेगा। और धीरे-धीरे तो जानकी पूरी तरह से सकीना को अपनी जिन्दगी से काटती चली गयी थी। अगर सकीना उससे मिलने जाती भी तो काम-वाम का बहाना बनाकर उससे कन्नी काट लेती।

हारकर सकीना ने भी उसके यहाँ जाना एकदम बन्द कर दिया था। लेकिन चरित्तर और उसके मरद गफूर की दोस्ती पहले जैसी ही बनी रही थी ।

समय अपनी गति से आगे बढ़ता गया था। सकीना और जानकी दोनों ही एक दूसरे से पूरी तरह बेजार अपनी गृहस्थी में मस्त रहने लगी थीं। जानकी का बेटा सुखराम भी धीरे-धीरे बड़ा होता गया था। जानकी और चरित्तर के पूरे जीवन का सुख कह लीजिए या भविष्य का सपना, सारा कुछ तो सुखराम ही था। सो उन दोनों के दामन में जितना भी प्यार था, सारा का सारा सुखराम के लिए सुरक्षित था। लेकिन सुखराम था कि एक साथ अपने माँ-बाप का उतना सारा प्यार सँभाल पाना या प्यार बचा पाना, शायद उसकी औकात से बाहर था। लाजिमी था कि जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती गई थी, घर में उसका कद भी बढ़ता गया था। इतना कि उसके कद के आगे उसके माँ-बाप भी बौने सिद्ध होते गये थे। और एक दिन तो माँ-बाप के सारे अरमानों पर का कालिख पोतते हुए पता नहीं कहाँ से उसने दो बच्चे वाली औरत को बीवी बनाकर घर में ला खड़ा किया था। काम-धाम के नाम पर

लफंगागिरी और घर में माँ-बाप पर बादशाहत झाड़ते रहना, यही उसका रोजनामचा होकर रह गया था।

अब चरित्तर जब भी सकीना के घर आता, गफूर के आगे अपने बेटे की कारस्तानियों का ही रोना रोता रहता। सकीना सुनती तो दुख तो होता उसे, पर अपने बाँझ होने का सुकून भी मन के किसी कोने में महसूस करती कि अल्लाह ताला जो भी करते है, बेहतरी के लिए करते हैं।

अचानक ही पिछवाड़े में लगे क्यारी से बैगन तोड़ते हुए सकीना की नजर को कमर तक के हो गये अमरूद के पौधे ने आकर्षित किया था। हालाँकि ऐसा नहीं कि इसके पहले सकीना की नजर पड़ी ही नहीं थी उस पौधे पर, मगर कभी उस पर तबज्जो नहीं दिया था उसने। लेकिन उस दिन पहली बार उसके मन ने कहा था कि जब यह पौधा उग ही आया है तो क्यों न थोड़ा जड़ के पास किरौनी-उरौनी कर दी जाय। फिर तो वह उसी समय से जुट गयी थी उसकी सेवा में । साल लगते, न लगते उस पौधे ने पूरे पेड़ का रूप आख्तियार कर लिया था और अपनी शाखों पर पहले फूल, फिर फल उगाने शुरू कर दिये थे। सकीना ने उसके फल को चखा तो निहाल हो गयी - "अल्लाह, इतना मीठा ?"..... गफूर ने भी खाया तो वाह कर उठा ।

जैसे-जैसे अमरूद का वह पेड़ अपनी शाखा रूपी बाँहों को विस्तारित करता गया, फलों की गदराहट बढ़ती ही गयी थी शाखों पर । इतना ही नहीं, निकला भी वह पेड़ "बारहमसिया"..... यानी बारहों माह फल देने वाला । अब उतने सारे फलों का, वह भी रोजाना, उपयोग कौन करे, जबकि घर में सिर्फ दो प्राणी । लाजिमी था, रोज ही कुछ फल पककर जमीन पर गिरते रहते, कुछ परिन्दे - गिलहरियों की भूख मिटाने के उपयोग में आते, तो कुछ आस-पड़ोस में बँट जाते ।

तभी एक कुजड़िन ने सकीना के सामने एक दिन पेशकश रखी कि अगर सारे पके अमरूद वह उसके हाथ किलो के हिसाब से बेच दे तो वह खुद भी जिये - खायेगी और सकीना को भी कुछ आमदनी हो जायेगी।

भला सकीना को इसमें क्या उज्र होने वाला था? बल्कि जब हाथ पर कुछ आमदनी आने लगी, तब वह पेड़ की देखभाल में और भी सतर्क रहने लगी। यहाँ तक कि जमीन पर गिरे फलों के बीज से जो पौधे निकलते उन्हें भी उखाड़ कर इधर उधर रोपने और उनकी देख भाल करने लगी । आमदनी के पैसों से उसने उस जमीन के टुकड़े को बाड़ से घिरवा दिया ताकि जानवरों और बच्चो से बगीचे की रक्षा हो सके ।

फिर तो कुछ ही वर्षो में जमीन के उस छोटे से टुकड़े ने अच्छे-खासे अमरूद के बाग का रूप अख्तियार कर लिया था । साथ ही एक व्यवसाय का रूप भी । आस-पास के लोग और कुंजड़ों ने बाग का नामकरण भी कर दिया था - गफूर का बगीचा । पता पूछने वाले राहगीरों को यह बताया जाने लगा कि आगे जाने पर गफूर का बगीचा मिलेगा - अमरूद का जो बगीचा है, वही । उस बगीचे से पूरब या दक्खिन या .....चले जाओ वहाँ से दो बाँस या पाँच बाँस या सटा हुआ ही वह घर मिल जायेगा।..... या गफूर के बगीचे के पास पहुँचकर किसी से पूछ लेना.....।

उम्र के साथ-साथ गफूर और चरित्तर दोनों के ही हाथ-पैर अशक्त होते चले गये। और एक दिन ऐसा भी आ गया, जब दोनों को अपने काम से सन्यास लेना पड़ गया था । जहाँ तक गफूर का प्रश्न था, तो उस पर तो सन्यास लेने का कोई असर ही नहीं पड़ा था। लेकिन चरित्तर के नकारा हो जाने ने, उसे और उसकी बीवी जानकी को बिल्कुल ही तोड़ दिया था । बेटे का सलूक ऐसा दोनों के साथ जैसे वे माँ-बाप न हों उसके, बल्कि दरवाजे पर पड़े कुत्ते-कुत्ती हों। वह भी बीमार और सड़ांध उगलते खाज वाले कुत्ते-कुत्ती ।

रही बात गफूर की, तो दोनों मियाँ-बीवी के बुढ़ापे का सहारा उनके अमरूद का बाग तो था ही। वह भी बारहमसिया ।..... जो रोज ही गुजारे लायक अच्छी आमदनी दे जाता । फिर गफूर काम करे या न करे, क्या फर्क पड़ता था दोनों को। बल्कि समय-समय पर गफूर और सकीना चरित्तर की भी मदद कर दिया करते। कभी जानकी या चरित्तर को कपड़े देकर, कभी उन्हें खाना खिलाकर, तो कभी नगद रूपयों से भी ।

एक दिन यों ही वार्तालाप के क्रम में चरित्तर अन्दर से पूरी तरह टूट कर बोल ही पड़ा था गफूर से "न, ऐसे बेटे से तो बेहतर यही होता कि मैंने भी तुम्हारी तरह दो-चार पेड़ लगा लिए होते। बुढ़ापा आराम से कट जाता । आज जो जिल्लत उठानी पड़ रही है, वह तो न उठानी पड़ती।"

"अरे क्या बात करता है चरित्तर", बोला था गफूर "यह तो खुदा की रहमत है कि तू एक बेटे का बाप है । नालायक ही सही, पर तेरे नाम को जिन्दा तो रखेगा।"

"नहीं रे गफूर । जो बेटा जीते जिन्दगी हम दोनो को मार डालने को आमादा है, वह भला मेरे नाम को क्या जिन्दा रखेगा ? और तुम्हारे बेजान पेड़ ?..... इन्होंने तो जीते जी तुम्हारे नाम को अमर कर दिया । इलाके का है कोई जो गफूर के बगीचे को जानता न हो।" बोलते-बोलते सुबक पड़ा था चरित्तर ।

समय अपनी रफ्तार में खिसकता गया था । उसकी रफ्तार ने गफूर, सकीना, चरित्तर, जानकी, उनके आगे की दो एक पीढ़ीयों को भी निगल लिया था। पर नहीं निगल पाया था, तो गफूर के नाम को, जिसे उस अमरूद के पेड़ और पेड़ के खानदान ने मिलकर लम्बे समय के लिए अमर कर दिया था - खुद मिटकर भी एक होनहार पुत्र की तरह पूरे इलाके में गफूर के नाम को बच्चे-बच्चे की जुबान पर चिपका दिया था - 'गफूर का बगीचा' ।

आज गफूर के घर की जगह एक आलीशान बंगला खड़ा है, जिसके गेट पर लगे नेम प्लेट पर लिखा है - "ज्योतिन्द्र सहाय, एडवोकेट, गफूर का बगीचा।"

आज गफूर की रूह जहाँ भी होगी, उसे इस बात का बिल्कुल भी अफसोस नहीं हो रहा होगा कि वह बेऔलाद मरा या उसका नाम जिन्दा नहीं है ।

एर्विन श्रोडिंगर

('भारत क्या है' से उद्धृत)

"निर्वाण, पवित्र व आनंददायक ज्ञान की अवस्था है. अहंकार व पार्थक्य एक भ्रम है. मनुष्य का यह लक्ष्य है कि वह अपना कर्म करता रहे और उत्तरोत्तर उसे परिष्कृत करता रहे. जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तब भी उसके कर्म जीवित रहते हैं और अपने लिए एक और पार्थिव देह का सृजन कर लेते हैं."

स्वतंत्रता, स्वाधीनता और स्वच्छंदता

रमेश जोशी

मनुष्य के अतिरिक्त सभी के लिए प्रकृति ने एक तंत्र की स्थापना की है और सभी जीवों में वह तंत्र उनकी मूल प्रवृत्तियों में शामिल है. वे सब उसी के अनुसार आचरण करते हैं. एक चूहे को एक चूहे के रूप में कोई शर्म अनुभव नहीं होती. वह एक अच्छा चूहा बनने का प्रयत्न करता है और चूहे के रूप में सुखी रहता है. जब तक मनुष्य उसके तंत्र में बाधा नहीं पहुँचाए. अपने आप प्रकृति का तंत्र नहीं बिगड़ता है. किसी प्रजाति का विलुप्त होना या उसका आचरण बदलना अपने आप नहीं होता. जब मानव उनको अपने शौक या आर्थिक लाभ के लिए पालता है तो जीवों के खानपान और आदतें बदल जाती हैं. जंगल में स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाली गायों में 'मैड काऊ डिजीज' नहीं होती. उन्हें तो जब फटाफट मांस बढ़ाने के लिए उल्टा-सीधा खिलाया जाता है तब गड़बड़ होती है. मुर्गियों में बर्ड फ्लू तब फैलता है जब उन्हें कम से कम जगह में ठूँस-ठूस कर भर दिया जाता है. पृथ्वी ने अपने हिसाब से नदियों और पहाड़ों के द्वारा अलग-अलग अंचलों का निर्माण किया है. उसी में शताब्दियों से रहते मिलते-जुलते रोते-हँसते नाचते-गाते मरते-जीते सुख-दुःख भोगते एक समानता एक सभ्यता एक संस्कृति एक दर्शन एक जीवन पद्धति पनपती विकसित होती है जो उन्हें सारी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के बावज़ूद एक बनाती है और बनाए रखती है.

भारत में विचारों की स्वतंत्रता होने के बावज़ूद एक आतंरिक एकता बनी रही क्योंकि अखंड भारत के रूप में प्रकृति ने उसे एक विशिष्ट अंचल और इकाई बनाया है. तभी विभिन्न राजाओं और राज्यों के होते हुए भी आसेतु हिमालय भारत एक था. इसकी एकता ने एक आर्यावर्त एक भारत का रूप दिया एक दर्शन दिया. भारतीय श्रद्धा ने माता पिता और गुरु के साथ मातृभूमि को भी एक देवता का दर्ज़ा दिया. मातृभूमि को माँ मानने से उसकी समस्त संतानों में सहोदरत्त्व का एक सूत्र आत्मा में होकर गुजरता रहा. मातृभूमि एक प्रकट सगुण ईश्वर है. कालांतर में बाहर से आए आक्रमणकारियों के साथ आई विचारधाराओं में वह विराटता नहीं थी. एक व्यक्ति एक पुस्तक एक धार्मिक स्थान से जुड़ने के कारण हजारों वर्षों का साथ भी उन्हें चन्दन पानी की तरह मिला नहीं सका. फिर भी भारत की समन्वयवादी सोच ने उन्हें काफी हद तक अपने साथ मिलाया. यदि यही सब कुछ चलता रहता तो अच्छा था किन्तु कुछ अंग्रेजों की बाँटने की नीति कुछ धर्मों की कट्टरता और लोकतंत्र की आड़ में तुच्छ सोच वाले नेतृत्वों ने इस तानेबाने को नुकसान पहुँचाया. इसके बाद धर्मों के कन्धों पर चढ़ कर आए शीत युद्ध विदेशी घुसपैठ और विदेशी धन ने इस अलगावादी सोच को और हवा दी. अब लोकतंत्र ने नाम पर क्षुद्र जातिवादी राजनीति और उपभोक्ता संस्कृति ने इसे एक अग्नि भरा तूफ़ान बना दिया है. स्वतंत्रता दिवस इस पर विचार करने का क्षण है.

प्रत्येक समाज का राष्ट्र का एक तंत्र होता है जो धीरे-धीरे विकसित होता है और वही उसके शासन तंत्र का आधार बनता है. हमारे पास व्यवस्था का एक लंबा इतिहास है. उसी को समयानुसार आवश्यक परिवर्तन करके सुधारना चाहिए. आज भी मानवीय संबंधों प्रकृति के साथ सामंजस्य के सूत्रों मितव्ययिता और संयम की जीवन शैली ही हमारे तंत्र का आधार हो सकती है. आज की गैर जिम्मेदार उपभोक्ता संस्कृति और अंधे कानून हमारे मार्गदर्शक नहीं हो सकते. हमारी जीवन शैली ही हमारी हो सकती है. वही हमें गति प्रदान कर सकती है और वही हमारा धर्म हो सकती है.

अँग्रेजों के जाने के बाद स्वतंत्र बनते समय हमने इस नींव को भुला दिया. स्वाधीनता का अर्थ है कि हम अपने नियंता और मालिक बनें. कानून के डंडे से संचालित जीवन की अपेक्षा स्वप्रेरित जीवन जिएँ. यहीं आकर संस्कारों का महत्त्व पता चलता है. संस्कार हममें एक ऐसी आदत का निर्माण कर देते हैं कि स्वतः ही एक समरसता का जीवन जीने लगते हैं. बिना किसी यश पुरस्कार या मीडिया में आने की इच्छा के हम मानवीय संबंधों और संवेदनाओं को जीते हैं.

हम मानते हैं कि कोई नहीं तो भगवान तो देखता है. हमारी आत्मा ही परमात्मा बन कर हमारा नियंत्रण करती है. आज तो हम पकड़े जाने तक अपने को दूध का धुला बताते हैं. पकड़े जाने पर भी धन सत्ता आदि के बल पर सत्य को झुठलाने प्रयत्न करते हैं. ये किसी संगठित और संस्कारवान समाज के लक्षण नहीं हैं. बिजली चोरी अतिक्रमण भ्रष्टाचार रिश्वत आदि इसी संस्कारहीनता के कुफल हैं. धनवान को आँख मींच कर आदर देना और गरीब को हीन मानना निश्चित तौर पर भारतीय संस्कार तो नहीं हैं. पहले मोहल्ले में किसी भी शंकास्पद व्यक्ति को कोई भी बुजुर्ग कहीं भी टोक लेता था. किसी युवा या बालक को गलत हरकत करते देखकर कोई भी बुजुर्ग उसे चेक करने का अधिकार रखता था. आज आदमी अपने बच्चों को टोकने से डरता है. यह सब स्वच्छंदता की अपसंस्कृति है. समाज का कोई भी प्राणी किसी भी तरह से स्वच्छंद नहीं है. वह जन्मना ही समाज का अंग है. स्वतंत्रता और स्वाधीनता का स्वच्छंदता में बदल जाना ही आज के समय की सबसे बड़ी समस्या है. अपनी स्वच्छंदता को व्यवस्था और अनुशासन में ढालें और सही अर्थों में स्वाधीन बनें स्वच्छंद नहीं. बिना सिग्नल के यातायात कैसे हो सकता है? हर वाहन में गति ही नहीं ब्रेक का विधान भी होता है. ज़रा बिना ब्रेक की गाड़ी की कल्पना तो कीजिए. यह सोच कर नियम पालन और अनुशासन की आदत डालें.

सब को सही अर्थों में भाषा धन पद जाति धर्म से परे समान मानने का आदर्श अपनाएँ तभी बात बनेगी क्योंकि लोकतंत्र में राजा और प्रजा ही नहीं वरन सभी एक राष्ट्र होते हैं. आवश्यकता 'माता पृथिव्यां पुत्रोहम' मानने की है न कि वंदेमातरम सूर्य नमस्कार और सरस्वती पूजा पर राजनीति करने की रंग-नस्ल और धर्म के आधार पर दुनिया को बाँटने की. मंदिर मस्जिद चर्च गुरुद्वारा मठ या सिनेगाग से पहले देश दुनिया और मानव मात्र की सुख-शांति-संतोष हैं.

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फाल्गुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के सब झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोलें करने, वह सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आए थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ से सफेद होकर चाँदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था, और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई उस फीरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर, अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में जरी के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा था, जो पैर लगते ही हाथ भर धँस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने हुए शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमरमर के आधारों पर सोने-चाँदी के फूलदानों में ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे थे। दीवारों और दरवाज़ों पर चतुराई से गुँथी हुई नागकेसर और चम्पा की मालाएँ झूल रही थीं जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरों की देश-विदेश की वस्तुएं करीने-से सजी हुई थीं.

बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। आज इतनी रात हो गई, अभी तक नहीं आए। सलीमा चाँदनी में दूर तक आँखें बिछाए सवारों की गर्द देखती रही। आखिर उससे न रहा गया, वह खिड़की से उठकर, अनमनी-सी होकर मसनद पर आ बैठी। उम्र और चिन्ता की गर्मी जब उससे सहन न हुई, तब उसने अपनी चिकन की ओढ़नी भी उतार फेंकी और आप ही आप झुँझलाकर बोली - 'कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब क्या करूँ?' इसके बाद उसने पास रक्खी बीन उठा ली। दो-चार उँगली चलाई मगर स्वर न मिला। भुनभुनाकर कहा - 'मर्दों की तरह यह भी मेरे वश में नहीं है।' सलीमा ने उकताकर उसे रखकर दस्तक दी। एक बाँदी दस्तबस्ता हाज़िर हुई।

बाँदी अत्यन्त सुन्दरी और कमसिन थी। उसके सौन्दर्य में एक गहरे विषाद की रेखा और नेत्रों में नैराश्य-स्याही थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा, "साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बाँसुरी?'

बाँदी ने नम्रता से कहा, 'हुजूर जिसमें खुश हों।'

सलीमा नेकहा, 'पर तू किसमें खुश है?'

बाँदी ने कंपित स्वर में कहा, 'सरकार बाँदियों की खुशी ही क्या?'

क्षण भर सलीमा ने बाँदी के मुँह की तरफ देखा वैसा-ही विषाद, निराशा और व्याकुलता का मिश्रण हो रहा था।

सलीमा ने कहा, 'मैं क्या तुझे बाँदी की नजर से देखती हूँ?'

'नहीं, हजरत की तो लौंडी पर खास मेहरबानी है।'

'तब तू इतनी उदास, झिझकी हुई और एकान्त में क्यों रहती है? जब से तू नौकर हुई है, ऐसा ही देखती हूँ! अपनी तकलीफ मुझसे तो कह प्यारी साकी।'

इतना कहकर सलीमा ने उसके पास खिसक कर उसका हाथ पकड़ लिया।

बाँदी काँप गई, पर बोली नहीं।

सलीमा ने कहा, 'कसमिया तू इतनी उदास क्यों रहती है! अपना दर्द मुझसे कह?

बाँदी ने कम्पित स्वर में कहा, 'हुजूर क्यों इतनी उदास रहती हैं?'

सलीमा ने कहा, 'इधर जहाँपनाह कुछ कम आने लगे हैं। इससे तबीयत जरा उदास रहती है।'

बाँदी, 'सरकार, प्यारी चीज़ न मिलने से इंसान को उदासी आ ही जाती है, अमीर और गरीब, सभी का दिल ही है।'

सलीमा हँसी। उसने कहा, 'समझी, अब तू किसी को चाहती है। मुझे उस का नाम बता, उसके साथ तेरी शादी करा दूँगी।'

साकी का सिर घूम गया। एकाएक उसने बेगम की आँखों मे आँख मिलाकर कहा, 'मैं आपको चाहती हूँ।'

सलीमा हँसते-हँसते लोट गई। उस मदमाती हँसी के वेग में उसने बाँदी का कम्पन नहीं देखा। बाँदी ने वंशी लेकर कहा, 'क्या सुनाऊँ?'

बेगम ने कहा, 'ठहर, कमरा बहुत गर्म मालूम होता है। इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चाँदनी का लुत्फ उठाने दे और फूलमालाएँ मेरे पास रख दे।'

बाँदी उठी। सलीमा बोली, 'सुन, पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूँ।'

बाँदी ने सोने के गिलास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा, 'उफ़! यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया?'

बाँदी ने नम्रता से कहा, 'दिया तो है सरकार?'

'अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तमबोल और मिला।'

साकी गिलास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तम्बोल मिलाया और भी एक चीज मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही साँस में उसे पीकर बेगम ने कहा, 'अच्छा, अब सुना। तूने कहा कि मुझे प्यार करती है, सुना कोई प्यार का गाना सुना।' इतना कह और गिलास को गलीचे पर लुढ़काकर मदमाती मसनद पर खुद लुढ़क गई और रसभरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वंशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया - "दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी ...."

वक्त देर तक साकी की वंशी और कण्ठ-ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी ख़ुद रोने लगी। सलीमा मदिरा और यौवन के नशे में होकर झूमने लगी।

गीत खतम करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गए हैं और ताम्बूल-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। साँस की सुगंध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षस्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की बूँदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उनका शरीर काँपा, आँखें जलने लगीं, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुँह चूम लिया।

इसके बाद ज्यों ही उसने अचानक आँख उठाकर देखा, ख़ुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहाँ खड़े उनकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को साँप डँस गया। वह हतबुद्धि की तरह बादशाह का मुँह ताकने लगी। बादशाह ने कहा, 'तू कौन है, और यह क्या कर रही थी?'

साकी ने धीमे स्वर में कहा, 'जहाँपनाह! कनीज़ अगर कुछ जवाब न दे तो?

बादशाह सन्नाटे में आ गए। बाँदी की इतनी स्पर्धा!

उन्होंने कहा, 'मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा, तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जायँगे।'

साकी ने कम्पित स्वर में कहा, 'मैं मर्द हूँ!'

बादशाह की आँखों में सरसों फूल उठी, उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उसके मुँह से निकला, 'उफ फाहशा।' और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर नीचे को उन्होंने घूमकर कहा - 'दोजख के कुत्ते! तेरी यह मजाल !' फिर कठोर स्वर से पुकारा - 'मादूम!'

क्षण भर में एक भयंकर रूपवाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया, 'इस मरदूद को तहखाने में डाल दे, ताकि बिना खाये-पिये मर जाए।'

मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोड़ी देर में दोनों लोहे के एक मजबूत दरवाजे के पास आ खड़े हुए। तातारी बाँदी ने चाबी निकालकर दरवाजा खोला और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझा ऊपर पड़ते ही काँपती हुई नीचे को धसकने लगी।

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी। बाल सँवारे, ओढ़नी ठीक की और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियाँ बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा, 'साकी ! बड़ी गर्मी है ! प्यारी साकी, जरा खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज गजब ढा दिया। शराब कुछ तेज थी।'

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने जरा जोर से पुकारा, 'साकी!'

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़कियाँ खोलने लगी, मगर खिड़कियाँ बाहर से बन्द थीं। सलीमा ने विस्मय से मन ही मन कहा, 'क्या बात है? लौंडिया सब क्या हुईं?'

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बाँदी नंगी तलवार लिए पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा, 'तुम लोग यहाँ क्यों हो?'

'बादशाह के हुक्म से।'

'क्या बादशाह आ गए?'

'जी, हाँ।'

'मुझे इत्तला क्यों नहीं की?'

'हुक्म नहीं था।'

'बादशाह कहाँ हैं?'

'जीनतमहल के दौलतखाने पर।'

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा, 'ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारोबार है, मुहब्बत को क्या समझें? तो अब जीनतमहल की किस्मत खुली?'

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा फिर बोली -

'मेरी साकी कहाँ है?'

'कैद में।'

'क्यों?'

'जहाँपनाह का हुक्म था।'

'उसका कुसूर क्या था?'

'मैं अर्ज नहीं कर सकती।'

'कैदखाने की चाबी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूँ।'

'आप को अपने कमरे से बाहर आने का हुक्म नहीं है।'

'तब क्या मैं भी कैद हूँ?'

'जी हाँ।'

सलीमा की आँखों में आँसू भर आए। वह लौटकर मसनद पर पड़ गई और फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ ठहर कर उसने एक ख़त लिखा, 'हुज़ूर! मेरा कुसूर माफ फर्मावें। दिन भर की थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुजूर के इस्तकबाल में हाजिर न रह सकी। और मेरी उस प्यारी लौंडी की भी जाँ-बख्शी की जाय। उसने हुजूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तला मुझे वाजबी तौर पर न देकर बेशक भारी कुसूर किया है, मगर वह नई, कमसिन गरीब और दुखिया है।

कनीज़

सलीमा।'

चिठ्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह की तबीयत बहुत नासाज थी। तमाम हिन्दुस्तान के बादशाह की औरत फाहशा निकले। बादशाह अपनी आँखों से परपुरुष को उसका मुँह चूमते देख चुके थे। वह गुस्से से तिलमिला रहे थे और गम गलत करने को अन्धाधुन्ध शराब पी रहे थे। जीनतमहल मौका देखकर सौतिया डाह का बुखार निकाल रही थी। तातारी बाँदी को देखकर बादशाह ने आगबबूला होकर कहा, 'क्या लाई हो?'

बाँदी ने दस्तबस्ता अर्ज की, 'खुदाबन्द! सलीमा बीबी की अर्जी है।'

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा, 'उससे कह दे कि मर जाय।'

इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया। बाँदी लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती पर बैठ गई। उसने बाँदी को बाहर जाने का हुक्म दिया और दरवाज़ा बन्द करके फूटफूटकर रोई। घण्टों बीत गए, दिन छिपने लगा, सलीमा ने कहा, 'हाय! बेगम होना भी बदनसीबी. बादशाहों की इंतज़ारी करते-करते आँख फूट जाए, मिन्नतें करते-करते जुबान घिस जाय, अदब करते-करते जिस्म के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं जरा सो गई, उनके आने पर जाग न सकी, इतनी सजा? इतनी बेइज्जती?'

'तब मैं बेगम क्या हुई? जीनत और बाँदियाँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी? इस बेइज्जती के बाद मुँह दिखाने लायक कहाँ रही? अब तो मरना ही ठीक है। अफसोस, मैं किसी गरीब की औरत क्यों न हुई।'

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गए। वह साँपनी की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हो गई। उसने एक और ख़त लिखा, 'दुनिया के मालिक! आपकी बीबी और कनीज़ होने की वज़ह से आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ, इतनी बेइज्जती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब है, मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस क़दर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि अदना-सी बेवकूफी की इतनी बड़ी सज़ा दी जाए । मेरा कुसूर तो इतना ही था कि मैं बेख़बर सो गई थी। ख़ैर, फिर एक बार हुजूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज करुँगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खें। सलीमा'

खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया, जिससे किसी की उस पर नजर न पड़ जाय। इसके बाद उसने जवाहर की पेटी से एक बहुमूल्य अँगूठी निकाली और कुछ देर तक आँख गड़ाकर उसे देखती रही, फिर उसे चाट गई।

बादशाह शाम की हवाखोरी को नज़रबाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए और चिट्ठी पेश करके अर्ज़ की, ' हुज़ूर! गजब हो गया। सलीमा बीबी ने जहर खा लिया और वह मर रही हैं।'

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए महल में पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा जमीन पर पड़ी है। आँखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से रहा न गया। उन्होंने घबराकर कहा, 'हकीम, हकीम को बुलाओ!' कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वर में कहा, 'जहे किस्मत।'

बादशाह ने नजदीक बैठकर कहा, 'सलीमा, बादशाह की बेगम होकर तुम्हें यही लाजिम था?'

सलीमा ने कष्ट से कहा, 'हुजूर, मेरा कुसूर मामूली था।'

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा, 'बदनसीब! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आँखों देखी को झूठ मान लूँ?'

जैसे हजारों बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़पकर सलीमा ने कहा, 'क्या?'

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा, 'सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?'

सलीमा ने अचकचाकर पूछा, 'कौन जवान?'

बादशाह ने गुस्से से कहा, 'जिसे तुमने साकी बनाकर अपने पास रक्खा था?'

सलीमा ने घबराकर कहा, 'हैं! क्या वह मर्द है?'

बादशाह, 'तो क्या, तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं?'

सलीमा के मुँह से निकला, 'या खुदा।'

फिर उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली, 'खाविन्द ! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं; इस कुसूर की तो यही सजा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फरमाई जाए। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूँ, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।'

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा, 'तो प्यारी सलीमा, तुम बेकुसूर ही चलीं?' बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा, ' मालिक मेरे! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मज़ा मिल गया। कहा-सुना माफ़ हो, एक अर्ज लौंडी की मंजूर हो।'

बादशाह ने कहा -'जल्दी कहो, सलीमा?'

सलीमा ने साहस से कहा, 'उस जवान को माफ कर देना।'

इसके बाद सलीमा की आँखों से आँसू बह चले और थोड़ी ही देर में ठण्डी हो गई।

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा और फिर बालक की तरह रोने लगा।

गजब के अँधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़ खुले. प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया, 'बदनसीब नौजवान क्या होश-हवास में है?'

युवक ने तीव्र स्वर से पूछा, 'कौन?'

जवाब मिला, 'बादशाह।'

युवक ने कुछ भी अदब किए बिना कहा, 'यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है, क्यों तशरीफ लाए हैं?'

'तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।'

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा, 'सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूँ, सुनिए। सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं उसे प्यार करता था।

सलीमा भी प्यार करती थी; पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे में रहने लगी और फिर वह शाहंशाह की बेगम हुई, मगर मैं उसे भूल न सका। पाँच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अन्त में भेष बदलकर बाँदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुजार देने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चाँदनी, सुगन्धित पुष्पराशि, शराब की उत्तेजना और एकान्त ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछा और मुँह चूम लिया। मैं इतना ही खतावार हूँ। सलीमा इसकी बाबत कुछ भी नहीं जानती।'

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद वह दरवाजे बन्द किए बिना ही धीरे-धीरे चले गए।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन, रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है, तो उस गंभीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्म-भेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ़-साफ़ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है, 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी!'

एकांत क्षण

लावण्या शाह

रात्रि का अंतिम प्रहर था
भोर आगमन अभी शेष था
थी सुप्त ज्योति आकाश में
अंतिम तारक प्रकाश में !
थे जीव पृथ्वी पे निरापद
निमग्न गहन निद्रा अंक में
नहीं कोई स्वर सूत कहीं
आकाश पे, अवकाश था।
गहन तिमिर आच्छादित
प्रच्छन मौन गुफा में सत्य,
प्रकृति के सजल नयन में
अनुत्तरित यक्ष प्रश्न सा !

मुमुर्षा में बदलती जिजीविषा

जयंत जिज्ञासु

आदमी जन्म लेता है, माँ की गोद से लुढ़ककर चलना सीखता है, फिसलते-फिसलते जवान हो जाता है, सँभलते-सँभलते बूढ़ा, फिर तो लुढ़ककर अलविदा। पर, कुछ लोग इस नैसर्गिक जीवन-चक्र को तोड़कर आत्मघाती निर्णय ले बैठते हैं। ज़िन्दगी तो जूझने का नाम है, न। किसी भी रिश्ते से कहीं महत्वपूर्ण है आपका होना। आप हैं, तभी रिश्ते-नाते, मैत्री, क़ुर्बत, फ़ासले सब हैं। किसी भी संबंध के चिरायुत्व का रहस्य परस्पर सम्मान व विश्वास है। यदि आपकी रूठने की प्रकृति है, तो अपने अंदर मनाने की प्रवृत्ति भी विकसित कीजिए। वरना, ज़िन्दगी बोझिल हो जायेगी। महानगरीय जीवन तो ऐसे ही स्वयं में त्रासदी है। तोल्सतोय ने ठीक ही कहा, "शहर में कोई ख़ुद को मृत समझकर बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है!"

जीवन के प्रति अटूट श्रद्धा ही नहीं, अपितु आस्था होनी चाहिए, तभी इंसान विषम परिस्थिति में ख़ुद को टूटने से बचा सकता है। एक ऐसे दौर में जबकि संबंधों का घनत्व लगातार घट रहा है और पहचान की स्वायत्तता के लिए ज़द्दोजहद बढ़ रही है; वैसे में वरीय साथी अंशु सचदेवा जैसी जीवन्त व ज़िन्दादिल इंसान का यूँ अचानक साथ छोड़कर जाना स्तब्ध तो करता ही है, साथ ही बोझिल मन से सोचने पर मजबूर करता है कि संवेदनशील-भावुक मन के लिए बेहद ज़रूरी है कि संवादहीनता की स्थिति से बाहर आया जाय, अंदर-ही-अंदर डेरा डाल रहे अकेलेपन के घेरे को तोड़ा जाये व अपनों से संवाद के तार जोड़े जायँ।

अल्पायु में अपनी इहलीला दुःखद ढंग से समाप्त करने से पहले इस निश्छल साथी ने शिक्षण-विधि में कई बुनियादी सुधार की सार्थक पहल की। आइआइएमसी से पढ़ाई करने के बाद गाँधी फेलोशिप प्राप्त कर सुदूर देहात के स्कूलों में बच्चों की प्रतिभा को तलाशने-निखारने-सँवारने के अनुपम कार्य में जुटी थीं। उनकी अदम्य जीवटता, जीवन्तता व जिजीविषा भरी प्रकृति बच्चों में नव ऊर्जा भरती थी। वो अपने ईमानदार व असरदार लेखन से लगातार जनसत्ता के सम्पादकीय पृष्ठ पर ज़गह पा रही थीं एवं अपनी बातों को प्रभावी ढंग से नीति-नियंताओं तक पहुँचा रही थीं।

कब तक होनहार प्रतिभाएँ पुष्पित-पल्लवित होने के पहले ही यूँ दम तोड़ती रहेंगी? भारतीय जनसंचार संस्थान में मेरे आने के बाद ये दूसरी तोड़ने वाली घटना है। पिछले साल ही सागर मिश्रा जी की ख़ुदकुशी की ख़बर से हम अभी ठीक से उबरे भी नहीं थे। २६ साल की अल्पायु, जब इंसान अपनी ज़िंदगी शुरू करता है, सागर पत्नी व परिवार को अकेला छोड़ इस जहाँ को अलविदा कह गये। कारण चाहे जो भी हो, पर पत्रकार की जीवटता व जिजीविषा को गहरा आघात लगा है । एक संभावनाशील व उदीयमान पत्रकार अपना संपूर्ण सौरभ बिखेरने से पहले ही हमारे बीच से चला गया।

बदलते समसामयिक सामाजिक संदर्भ में युवा पीढ़ी की बेचैनी व छटपटाहट को समझने की ज़रूरत है। आखिर, वे क्यों अपना सब्र खो रहे हैं? जवाब आसान नहीं है। अपने मशहूर, मार्मिक व प्रेरणास्पद उपन्यास "द ओल्ड मैन एंड द सी" में “आदमी को तबाह किया जा सकता है, मात नहीं दी

जा सकती", जैसे कालजयी उद्घोष करने वाले नोबेल पुरस्कार विजेता अर्नेस्ट हेमिंगवे जैसी शख़्सियत भी परिस्थितिजन्य कारणों से आत्महत्या कर बैठते हैं। हालात के आगे मजबूर होने को हम अपनी नियति क्यों मान बैठते हैं ? भावुकता विचलित करती है, विगलित करती है; समाधान नहीं देती।

कई बार कमजोर आर्थिक पक्ष भी हमें झिंझोरता है, घुटन व गहन अवसाद के गहरे गर्त में डाल देता है। प्रेम-विवाह व पारिवारिक स्वीकार्यता के बीच समन्वय भी सागर की सबसे बड़ी चुनौती रही। हमारे जीवन की त्रासदी यह भी है कि हम अपनी भावनात्मक निर्भरता किसी एक व्यक्ति के साथ इतना जोड़ लेते हैं कि शेष मित्रों से संवाद ही कम कर देते हैं। खासकर, युवा दोस्तों को सुकून के स्रोत का विकेन्द्रीकरण करना होगा। ख़ुशी के लिए परजीविता, पराश्रयता एक मोड़ पर आकर कचोटने लगती है।

पत्रकारिता का पेशा या समाजकार्य का क्षेत्र बेहद धैर्य की माँग करता है, नहीं तो खीझ कब घनीभूत अवसाद में तब्दील हो जाये, आपके अंदर की अनिर्वचनीय घनीभूत पीड़ा शनैः-शनैः आपकी जिजीविषा, जीवटता व आपके जुझारूपन को आपकी गंभीर हँसी के बीच से कब दरका जाये; यहाँ पता भी नहीं चलता है। अभिभावक से तो और भी भावनात्मक सहयोग, हिम्मत-अफ़ज़ाई व सब्र की अपेक्षा रहती है। कई बार अपने ही बच्चों के बीच अनावश्यक तुलना उनके मन में खीझ, चिड़चिड़ापन व कुंठा पैदा करती है। इसीलिए मैं महसूस करता हूँ कि इस मुल्क में अभिभावकत्व (पेरन्टिंग) की मुफ्त व ज़रूरी तालीम दी जानी चाहिए। बच्चों के मानस को समझना व तदनुसार उनका विकास करना आवश्यक है।

भीतर ही भीतर कुछ दरकता रहता है और अंत में जाकर बड़ा शून्य बन जाता है, सब बिखरता हुआ-सा दिखता है, जिसे हम कभी जोड़ नहीं पाते, समेट नहीं पाते हैं और उसी हौचपौच, बेचैनी, छटपटाहट, मानसिक उलझन व अनिर्णय की दशा में जब कुछ नहीं सूझता, तो हम ये ग़लती कर बैठते हैं, जिसे किसी के लाख बुलाने पर भी कभी लौटकर हम सुधार नहीं सकते। मुझे लगता है कि उस नाज़ुक पल में आदमी स्वयं से ही संवाद तोड़ देता है, तो फिर औरों से संवाद करने के बारे में कहाँ सोच पायेगा?

हादसा हो जाने के बाद हम तकलीफ में होते हैं कि अपने क़रीब के दोस्त के कुछ उदास अनछुए पहलुओं को समग्रता में, सूक्ष्मता से पढ़ने में हम चूक गये, उनकी मनःस्थिति से कभी वाकिफ न हो सके। हम ख़ुद को वाकई दोषी व लाचार महसूस करते हैं और अभागे भी ! हम न हाथ थाम पाते हैं, न पकड़ पाते हैं दामन और बड़े क़रीब से उठकर कोई चला जाता है। घर-परिवार की उम्मीदें हमारी ओर लगी हुई रहती हैं। जब सारी दुनिया आपकी ओर से निराश हो जाती है, तब भी प्रतीक्षारत पलकों के साथ दो लोग आपकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं – एक माँ और दूसरा आदर्श शिक्षक। हर शिष्य की मौत में अध्यापक की मौत होती है। परिवार के सदस्य अपराध-बोध में जीते हैं कि वे बच्चे की मनोदशा को भाँप नहीं सके, उसके अन्तर्मन के द्वन्द्व को वक़्त रहते पढ़ न सके। हमारे शुभेच्छु के पास अफसोस करने के अलावा कुछ बचता नहीं है कि अब जबकि दिन सँवरने वाले थे, तो अतिशय भावुक सदस्य को कहाँ जाके बिछड़ने की सूझी। अकबर इलाहाबादी ने ठीक ही कहा है -

"पुरानी रोशनी में और नई में फ़र्क़ है इतना
उसे कश्ती नहीं मिलती इसे साहिल नहीं मिलता।"

इस दमघोंटू स्थिति का मंथन करना होगा कि आखिर कब तक भावना-संवेदना व चेतना में समन्वय न बिठा पाने के चलते संवादहीनता का शिकार होकर निश्छल-निष्कपट-निष्कलुष प्रतिभा-प्रसून व कौशल-कुसुम यूँ असमय काल-कवलित होते रहेंगे? आर्थिक मोर्चे पर नौज़वान पीढ़ी की कमर तोड़ने वाले पेशे में कब उन्हें उनका समुचित प्राप्य मिलेगा?

बिन तुम्हारे

मंजीत कौर मीत

मोड़ पर खड़ा हूँ मैं
बिन तुम्हारे
विरह तन्हा हो गया
बिन सहारे
हाल भी न पूछता
अब आ के कोई
पास भी न बैठता
दिल लगा के कोई
आसमान से गिर रहा
ज्यूँ टूटे तारे
मोड़ पर ....

घेरती यादें तुम्हारी
बन के सपने
इस बेगाने देश में
मैं ढूँढूँ अपने
याद मुझको आते हैं
वो पल गुजारे
मोड़ पर .....

किस से कहूँ मैं यहाँ
पर दिल की बाती
विरह से मैं लिख रहा
हूँ नित्य पाती
ढूँढता भंवर में बैठा
मैं किनारे
मोड़ पर .....

माटी मेरे देश की
अब वह भी रूठी
अजनबी हवा में हो गई
साँस झूठी
याद मुझको आते हैं
गंगा के धारे
मोड़ पर .....

पार्क में बैठा हूँ
बिलकुल अकेला
पेड़-पौधे पक्षियों का
है झमेला
फूल कागज़ के खिले
बगिया में सारे
मोड़ पर .....

ढूँढती मेरी निगाहें
अब साथ मेरे
हम निवाला हम ज़ुबां
हमराज़ मेरे
करना चाहता हूँ
मैं कुछ दिल की बातें
मोड़ पर ....

लौट जाना चाहता हूँ
मैं वतन
ख़ाक के समान हैं
सारे रतन
सूखी रोटी देश की है
दुग्ध धारे
मोड़ पर खड़ा हूँ मैं
बिन तुम्हारे.

ज़ुन्नार

सोहनदास वैष्णव

मेरी अनुपस्थिति में कई दफ़ा मर चुकने के बाद अभी तक भी वह जिंदा है बेशरम! बेहया!

साँझ ढलते ही थिरकने लगते हैं उसके कदम! मचने लगता है शोर - डॉली! डॉली! डॉली.....! उसके एक-एक ठुमके पर बरसने लगते हैं नोट!..... फिर गढ़ जाती हैं सबकी लोलुप नज़रें उसके मचलते अंगों पर....।

लोग उसके चारों ओर घिर-घिर कर अपने अंदर का उबाल प्रकट करते रहते हैं।

..... और सात साल बाद वह फिर दिख गई। मेरी उम्मीदों के बिल्कुल विपरीत। सोचा था जब अगली बार भेंट होगी तो अवश्य मराठी धोती पहने होगी और बालों का जूड़ा बाँधकर उनमें लगा दिए होंगे चमेली के फूल! या पहले की भाँति जींस-टीशर्ट् में मेरी राह ताकती उतनी ही हसीन! उतनी ही कमसिन ....!

.... लेकिन आज नज़ारा बदला हुआ था। यह क्या....? मेरे बचपन की डॉल...यहाँ आकर 'डॉली' बन गई थी।

लकड़ी के टेबल जिस पर जर्मन फूलदान में रंग-बिरंगी डैने सजाए हुए थे उससे सटे हुए गद्देदार सोफे पर हम बैठे हुए थे। मैंने सिगरेट सुलगाई ही थी कि अचानक उस पर नज़रें ठहर गईं। मैंने सिगरेट का कश लिये बिना ही उसे एश-ट्रे में मसल दिया। उसे देखा तो सिगरेट का नशा ही खत्म हो गया था। उसके लिए तो मैं किसी भी नशे का वध करने को तैयार था। और हाँ... दूसरी बात यदि वह मुझे सिगरेट पीते हुए देख लेती तो उसकी नज़रों में मेरी छवि धूमिल हो जाने का डर भी था।

वह मेरे समकालीन थी। बचपन में मेरा हाथ पकड़कर स्कूल साथ लेकर जाती थी। उन दिनों मेरा परिवार एशिया की सबसे बड़ी झोंपड़पट्टियों में शुमार 'धारावी' में रहता था। यहाँ की सँकरी और तंग गलियों में बचपन बिताया था हमने। वह मराठी परिवार से थी और मैं राजस्थानी ब्राह्मण। गणपति और गुड़ी पड़वा हम साथ मनाते थे। उसके पिता ऑटो चलाया करते थे और उसकी आई रेलवे स्टेशन पर अंकुरित अनाज बेचा करती थी। हर शुक्रवार उसके घर में मछली बना करती थी इसलिए मेरी माताजी मुझे इस दिन उसके घर नहीं जाने देती थी।

बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतों की श्रृँखलाओं के बीच धारावी की झोंपड़पट्टियों में गुज़रे लम्हे आज भी खूब याद आते हैं। उगते हुए सूर्य की रोशनी पहले इन बड़ी-बड़ी इमारतों में पहुँचती थी फिर धारावी के बाशिन्दों के पास।

धारावी की इन झोंपड़पट्टियों को 'खोली' के नाम से जाना जाता था। इनकी छतें टीन की चादरों से ढकी रहती थीं। बहुत ही कम जगह में बनी खोलियों को लोगों ने इस कदर बना दिया था - जिनमें बेडरूम, किचन, बाथ, बालकनी और घर के बाहर रंगोली, फूलों से लदे हुए तरह-तरह के पौधे, घरों की शोभा वृद्धि करते थे।

जब कभी वह मेरे घर आती तो वापस अपने घर जाने का नाम ही नहीं लेती थी। वह अक्सर माताजी के साथ किचन में काम करने बैठ जाती। काम भी क्या? .... आधा किलो मटर तो वह स्वयं खा जाती थी। माताजी को वह मेरे लिए बहुत पसंद थी; इसलिए वे उससे बहुत स्नेह रखती थी।

हम कल्याण के बिरला कॉलेज में थर्ड ईयर तक साथ पढ़े। लोकल ट्रेनों में खूब धक्के खाए। कभी-कभी हम कॉलेज से बंक मारकर खण्डाला तक घूम आते थे। हर शुक्रवार को सिनेमा हॉल जाना हमारे जीवन का अहम हिस्सा था। इस बीच उसकी आई की मौत हो गई। कुछ दिनों बाद उसके पिता उसके लिए ले आए थे - एक नई माँ!

ग्रेजुएशन पूरी करने के बाद मैं उच्च अध्ययन के लिए डी.यू. चला गया। कई दिनों तक उसके बगैर मन नहीं लगा। जैसे-तैसे यहाँ सात वर्ष निकल गए। एक दिन माताजी का पत्र आया उन्होंने बताया कि उसके घर वाले धारावी से मकान खाली करके मुंबई में कहीं अन्यत्र चले गए हैं।

सात साल बाद जब मैं लौट कर आया तो अब उसे इतने बड़े महानगर में कहाँ ढूँढता, उनका कोई ठिकाना भी तो नहीं था। मेरे जाने के बाद उसने माताजी के पास आना भी बंद कर दिया था।

जब वह थी .... ऐसा लगता था शायद वह मेरे लिए ही बनी हो। और ज़िन्दगी इस क़दर खुश-गवार थी कि उसे बयाँ करना मुमकिन नहीं। उससे रोज लड़ाई-झगड़ा होता रहता था। गुस्से के मारे मैं कई दिनों तक उससे बात ही नहीं करता तो वह रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लेती थी। खाना-पीना छोड़ देती थी। फिर बीमार पड़ जाती और जब हॉस्पिटल से ठीक होकर लौटती और जब मैं मिलने जाता तब मुझे कहती "तुम कितने स्वार्थी हो, कितने मतलबी इंसान हो। एक बार आकर पूछा तक नहीं कि तुम कैसी हो?"

जब वह ऐसा कहती तब मैं एक बार हँस भी देता था और आँखों से आँसू भी टपक पड़ते थे। मैं उसे कई बार समझाता कि ऐसी बात मत किया कर जिससे अपने बीच लड़ाई हो और फिर तुम बीमार पड़ जाओ। लेकिन उसकी आदत तो जंगल-जलेबी की तरह थी जो मुझे भी गोलमाल कर देती थी। कुछ भी हो पर मैं बहुत खुश था। सिवाय पिताजी के जो हमेशा अपने ब्राह्मण होने का दंभ दर्शाया करते थे।

एक दिन मेरे मित्र नवीन ने मुझसे कहा "यार पृथ्वी..... अँधेरी वेस्ट में बहुत ही शानदार 'रेडक्रॉस' नाम का बीयर बार है। वहाँ पर 'डॉली' नाम की डांसर क्या गज़ब का डांस करती है। तुम देखने चलोगे क्या? एक-आध घूँट भी मार लेना। तुझे मजा आ जाएगा।"

बीयर बार के अंदर के हालात से मैं वाकिफ़ था। मन भी कच्चा हो रहा था कि यदि पुलिस ने रेड कर दी तो पता नहीं..... संदिग्ध अवस्था का मामला बताकर अंदर ठूँस दे।

वैसे मुझे इन सब चीज़ों का शौक नहीं पर नवीन ने मुझे बहका दिया। मैंने भी सोचा बीयर नहीं पीयेंगे तो क्या! सिगरेट का कश तो ले ही सकते हैं। और डांस देखने में क्या हर्ज़ है! मैं भी उसके साथ हो लिया।

रात गहराने के साथ बार में रोशनी की चमक बढ़ने लगी, नकली धुँआ उड़ने लगा, धमाधम डिस्को बजने लगा.....!

अब इंतजार था डॉली के डांस का। अगला नजारा मुझे चौंकाने वाला था। मैं गया तो डॉली का डांस देखने पर साथ ले आया विषाद की रेखाएँ....!

उसे देखते ही बार के वातावरण में रूखापन दौड़ गया। जैसे पतझड़ में पेड़ से टूटे पत्ते यह समझ नहीं पाते कि उनका क्या होगा? वैसे ही मन भी कह रहा था अब क्या होगा....?

इतने सालों बाद दिखी तो इस रूप में! उसे यहाँ देख मेरे अंदर आग फूट रही थी। मेरे अंदर का उबाल तो इतना था कि आँखें रक्तिम हो आईं। जहाँ सिगरेट पीने से भी डर लग रहा था वहाँ बोतल ज़हर समझ कर होंठों से लगा ली।

आज वह मुझे अपरिचित-सी आँखों से देख रही थी इससे बड़ी वेदना मेरे लिए और क्या हो सकती थी....? उसे देखते ही उसके साथ बिताई यादों के झरोखे खुल गए।

मुझे याद हो आया जब तक उसकी आई जीवित थी तब तक सब ठीक था उनके जाने के बाद सब धुँधला-सा गया है।

उसकी अल्हड़ हँसी पर आज ताले जड़े हुए थे। उसके होंठों पर थी दिखावे की मुस्कान! मुझे अनजान समझ कर उसने डांस के साथ गीत गाना शुरू कर दिया "मेरे नसीब में तू है कि नहीं तेरे नसीब में मैं हूँ कि नहीं.....।"

वह अपने आप को इस कदर पेश कर रही थी जैसे मुझे कुछ मालूम ही नहीं। वह रात को यहाँ डांसर का काम किया करती थी और रात एक बजे की अंतिम लोकल से अपने घर चली जाया करती थी। उसका गीत खत्म होने तक पूरी दो बोतलें मेरे अंदर समा गईं।

मेरा सिर घूमने लगा। मन तो हुआ उस पर हाथ उठाने का..... पर एकाएक उसका बचपन का मासूम चेहरा मेरी आँखों के सामने तैर आया।

बार में मन नहीं लग रहा था आँखों में अतीत के आँसू बह रहे थे। उठकर बाहर चला आया। नवीन तो वहीं लुढ़क गया था।

रात एक बजे तक स्टेशन पर उसके आने का इंतजार किया। वह आयी तो उसका हाथ पकड़ कर मैंने पूछा "यह सब क्या है?"

"तुम इतने दूर चले गए। पढ़ाई छूट गई। पापी पेट के लिए दो वक्त की रोटी का इंतज़ाम तो करना ही था। मैं क्या करती? सौतेली माँ के ताने सुनने से तो बेहतर था मैं यहाँ आ गई। फिर क्या अच्छा, क्या बुरा.....!" उसने कहा था।

"एक बार मम्मी से आकर मिल तो सकती थी तुम?"

"हाँ..... तुम्हारे साथ जीने की अदम्य लालसा मन में लिए मैं गई थी तुम्हारी देहरी पर ..... लेकिन तुम्हारे दर पर मुझे ठोकर खानी पड़ी। मन में ही दफ़ना दिए अनगिनत सपने! खुशियों का सैलाब जो मन में उमड़ रहा था; तुम्हारे पिता ने उसे शांत कर दिया। मैं बैरंग लौट आई।

"तुम्हें एक बार भी मेरा ख्याल नहीं आया। कुछ और काम-वाम भी तो कर सकती थी?"

"कहाँ जाती? जहाँ भी गई सभी ने जिस्म की नुमाइश की। अब तुम ही बताओ मैं क्या करती?"

"मैं जानता हूँ तुम्हारा मन मैला नहीं है, उतना ही पवित्र है जितना मैं छोड़कर गया था। कल से तुम यहाँ नहीं आओगी, किसी को कुछ कहने-समझाने की ज़रूरत नहीं। हम कल ही दिल्ली चले जाएँगे। एक बार आकर माताजी से मिल लेना वह तुम्हें बहुत याद करती है।"

"अरे बाबू! मेरे लिए क्यों अपना जीवन खराब कर रहे हो?"

"खबरदार जो आगे कुछ बोला। बस कल घर आ जाना।"

मैं घर चला आया वह अपने घर चली गई। रात सुबह होने के इंतजार में कटी। सुबह उठा तो अख़बार ने मेरे होश उड़ा दिए।

"..... रेडक्रॉस बार की मशहूर डांसर डॉली की नींद की गोलियाँ खाने से मौत!"

पुलिस आत्महत्या के कारणों की तह तक जाने में लगी हुई है।

मेरा रोम-रोम काँप उठा। मेरी खुशी का खज़ाना आज लुट गया। और टूट गया प्रेम का ज़ुन्नार।

"..... शादी के लिए कहा था मरने के लिए नहीं। मुझे इतना पराया समझ लिया जो अकेला छोड़ चली! क्या मैं तुम्हारा बोझ उठाने लायक नहीं था? तुम्हे लाल साड़ी में देखने की मेरी प्रबल इच्छा को तुमने क्यों दफ़ना दिया?"

कानों पर हथेलियाँ रखते हुए मैंने आँखें भींच लीं।

अख़बार के पृष्ठों पर गिरते टप-टप-टऽप-टऽऽप ..... आँसू!

बाहर से उड़कर कुछ टूटे हुए डैने मेरे पास आकर गिर गए थे। हवा से अख़बार के पृष्ठ भी इधर-उधर भागने लगे।

वातावरण में फिर सन्नाटा! रूखापन! ग़म से भरी उगती हुई सुबह!

खूब होता है

दिनेश कुमार जांगड़ा

एक ही गलती दुबारा खूब होता है,
अक्सर ये नज़ारा खूब होता है।

तक़दीर का रोना क्यूँ रोते हो दोस्त?
मेहनती का गुज़ारा खूब होता है।

बुलंदी किरदार में यूँ ही नहीं आती,
आज का विजेता हारा खूब होता है।

अँधेरी रात में मुसाफिर हार ना हिम्मत,
सुबह सूरज का उजाला खूब होता है।

सफर के संघर्ष को उठकर बता देता,
पाँव का छाला हमारा खूब होता है।

उसूल वाला राह से जाता है बेदाग़,
यूँ तो फिसलन ने पुकारा खूब होता है।

सूखा होकर भी बड़ा सुकून देता है,
ईमानदारी का निवाला खूब होता है।

कल की फ़िक्र में आज दुखी होता,
नादान इन्सां भी बेचारा खूब होता है।

मेरी माँ

अभिनन्दन कुमार

वसुंधरा से भी ज्यादा सहनशील
कमल से कहीं कोमल
आसमां इतना बडा दिल
माँ गंगा की भाँति निर्मल
ऐसी है मेरी माँ
मेरी माँ।

खुद भूखे रहकर
मुझको खाना खिलाती है
जब तक सो न जाऊँ
मीठी लोरी सुनाती है
जो हो जाऊँ कभी नज़रों से दूर
बेचैन हो जाती है
कितनी भी गलती करूँ
दोषी दूसरे को ही बताती है
ऐसी है मेरी माँ
मेरी माँ।

मुझे डाँटती है, डराती है
फिर डर भगाने की ख़ातिर
अपने आचँल तले छुपाती है
जब कभी देती है मुझे थपप्ड का दर्द
कहीं ज्यादा अपना दिल दुखाती है
जो हो कोई दर्द मुझे
तो वो अपना आँसू बहाती है
ऐसी है मेरी माँ
मेरी माँ।

बिना किसी लालच के
वो अपना मोह मुझपे लुटाती है
मेरी ख़ुशी के लिये
अपना गम भूल जाती है
रोज सुबह खुदा के दरबार जाके
सिर्फ मेरे लिए दुआ कर आती है
जब कभी मैं उन्हें सताता हूँ
तो हँस कर माफ कर देती है
ऐसी है मेरी माँ
मेरी माँ।

स्नेह ठाकुर का रचना संसार

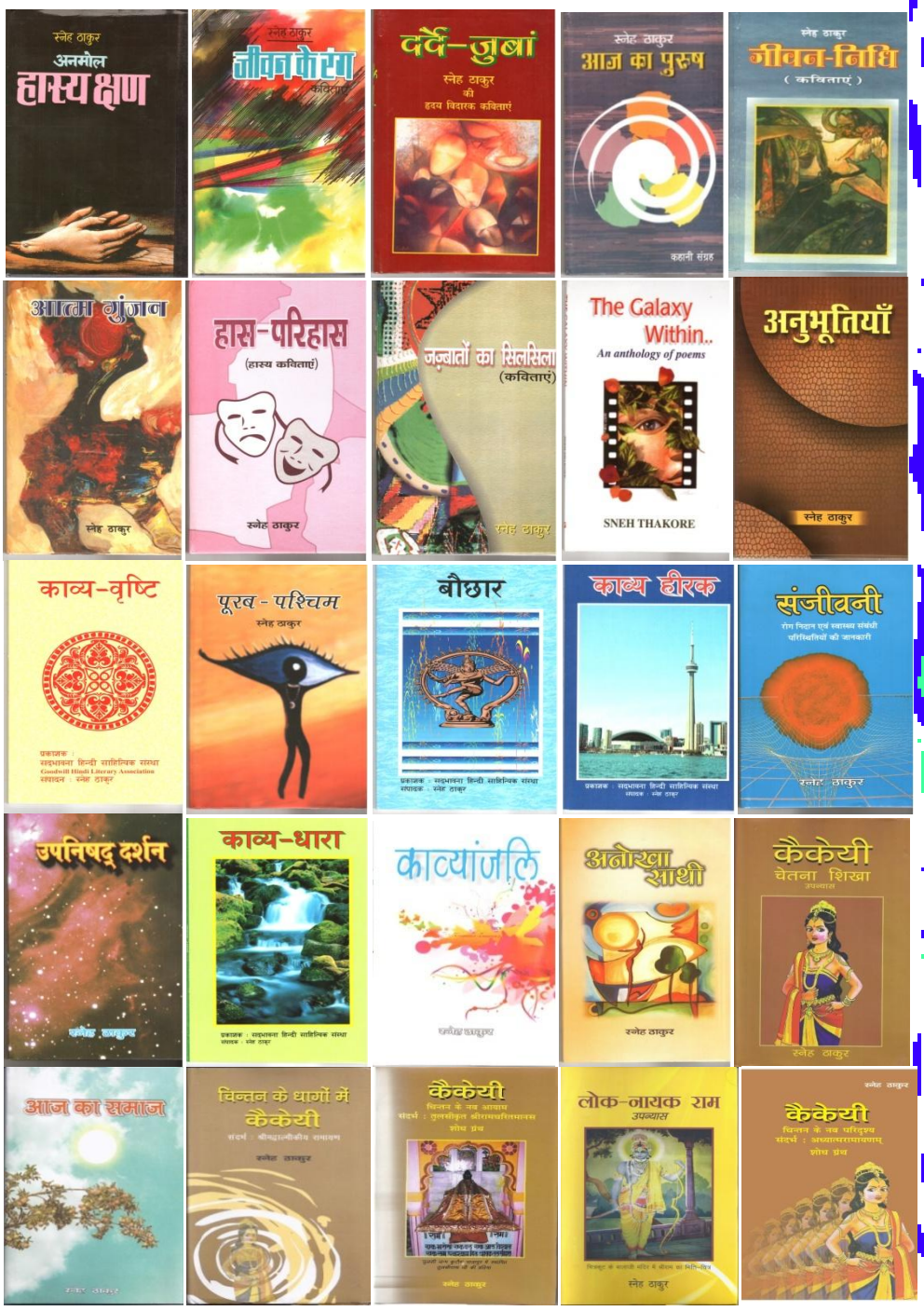

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताए)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित